तीसरा अध्याय

संजीव के उपन्यासों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

उपन्यास को गद्य युग का महाकाव्य कहा जाता है और यह साहित्य के समाजशास्त्रियों के बीच सबसे लोकप्रिय विधा है क्योंकि यह कविता की तरह आत्मपरकता और नाटक की तरह मायालोक से काफी दूर होता है। इसमें अपने समय और समाज में फैले मनुष्य की सामाजिकता से पहचान होती है। समाज में प्रचलित विभिन्न रूढ़ि, परंपरा, अंधविश्वास, रीति-रिवाज, सभ्यता, संस्कृति, उत्सव, पर्व, संस्कार, जाति, विचार, चिंतन, धर्म, आजीविका, परिवार, पुलिस, प्रशासन, राजनीति आदि का चित्रण और विवेचन उपन्यास में होता है। इसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण ही **'उपन्यास का समाजशास्त्र'** है। उपन्यास में कल्पना और यथार्थ की पहचान आसानी से की जा सकती है। इसलिए उपन्यास का समजाशास्त्रीय विश्लेषण अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल और विश्वसनीय विधा है।

उपन्यास के उदय को पूंजीवादी औद्योगिक समाज में मध्यवर्ग की आशाओं-आकांक्षाओं और पीड़ाओं से जोड़कर देखा जाता है। वैसे तो जिज्ञासु प्रवृत्ति के होने के नाते संजीव अपनी प्रत्येक रचना के लिए शोध से गुजरते हैं। लेकिन उनकी पहचान एक उपन्यासकार से ज्यादा एक कहानीकार के रूप में है। मूलतः उन्होंने अपने उपन्यासों में अनछुए संदर्भों जैसे– कोयलांचल में मजदूरों की समस्या, ठेकेदारी, माफिया तंत्र, सर्कस के कलाकारों की अंतःव्यथा एवं त्रासदी तथा विज्ञान एवं वैज्ञानिकों का दोहन, लोक कलकार के जीवन-संघर्षों से रू-ब-रू होते हुए दलित, उपेक्षित और अछूत लोग, मेहनतकश मजदूर, अज्ञान, लिंग भेद, प्रौढ़ शिक्षा, किसान, भूमिहीन मजदूर, भूमंडलीकरण, सांप्रदायिकता और टेक्नोलॉजी इत्यादि इनके लेखन के प्रमुख विषय रहे हैं। उनके उपन्यासों के कथ्य पिछड़े अंचल के आदिवासियों, दलितों के पीड़ित और अभिशप्त जीवन का चित्रण ही नहीं करते बल्कि इन उपेक्षित लोगों के द्वारा विरोध का स्वर भी मुखर करते हैं। उपन्यास लिखने के कारण के रूप में वे लंबी होती कहानियों के कलेवर को मानते हैं। प्रेरणास्रोत के रूप में वे प्रेमचंद, विश्वांभरनाथ शर्मा 'कौशिक', वृंदावन लाल वर्मा और जासूसी तथा बांग्ला के कुछ उपन्यासों को श्रेय देते हैं। वे मानते हैं कि –"मैंने जीवन को इतने रूपों में देखा है कि उनके बारे में दूसरों से शेयर करने

और उनके बरक्श प्रति संसार गढ़ने के क्रम में कहानियों का फलक अक्सर फैल जाते। ऐसे में वे कहानी कम उपन्यासिका या लंबी कहानी के ज्यादा करीब आने लगी। मैंने बहुतेरी कहानियाँ **'अपराध'** हो या **'प्रेत मुक्ति', 'ऑपरेशन जोनाकी' 'आरोहण', 'पूत-पूत! पूत-पूत!!', 'सागर सीमान्त'** हो या कई दूसरी, उन्हें छोटे कलेवर में रखना पड़ा, जबकि उनका थीम और दायरा बनता था उपन्यास का।"[1] उपन्यास कला के क्षेत्र में भी संजीव के उपन्यास अपना एक अलग महत्व रखते हैं। विविध भाषाओं, शिल्प रचना और संवेदना को रचने में उनका कड़ा मेहनत दिखता है।

अहेर

किशनगढ़ के अहेरी संजीव का प्रथम उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1981 में मीनाक्षी पुस्तक मंदिर द्वारा हुआ था। मुझे यह उपन्यास उपलब्ध नहीं हो पाया। परंतु इसी का पुनर्जन्म 'अहेर' नाम से 2014 में ज्योतिपर्व प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ, जिसे मैंने बार-बार पढ़ा। आजादी के बाद भी देश को नव अंग्रेजों के शोषण और चक्रव्यूह में पीसकर किशनगढ़ पिछड़ा और अभिशप्त इलाका बना रहा। जहाँ से विकास, चेतना और शिक्षा कोसों दूर है। किशनगढ़ प्रतीक है, भारतवर्ष के प्रत्येक पिछड़े और शोषित गाँव का। आर्थिक विषमता और जातिभेद से ग्रसित यह ग्रामीण समाज अंधविश्वास, अशिक्षा, आडंबर, सामंतवादी अत्याचार, नारी शोषण के दंश से कराह रहा है। यहाँ हर जाति के अपने अलग-अलग नेता और पंचायतें हैं जिनका अपना अलग राजनीतिक और जातिगत समीकरण होता है। जिसके कारण वे विकास के व्यापक दृष्टिकोण को समझ ही नहीं पाते हैं और प्रगति के पथ पर बढ़ ही नहीं पाते हैं। वे कुएँ का मेढ़क बने रहते हैं। यहाँ शोषक वर्ग के साथ एक नई गुंडा संस्कृति का मेल हो गया है। जो गरीबों, पीड़ितों और साधारण जनता को डरा-धमका कर अपनी मर्दानगी सिद्ध करना चाहता है। परंतु वास्तव में यह शोषक वर्ग नपुंसक है। इसमें प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों एवं राजनेताओं से अपने ग्राम समाज के लिए कुछ अदायगी करने का माद्दा ही

---

1. हंस, संपादक – राजेंद्र यादव, जनवरी, 1999, पृष्ठ संख्या – 133

नहीं है। वह तो सिर्फ गरीब जनता की थाली से रोटी झपटना जानता है। ऐसे ही गरीब, शोषित, पीड़ित जनता के संघर्ष के पक्ष में खड़ा रहना उपन्यासकार का उद्देश्य रहा है।

भूत-प्रेत, पूर्व जन्म, सती माई, बरम्ह बाबा, वैरागी बाबा, महावीरन स्वामी, अग्नि स्नान जैसे अंधविश्वासों से घिरा, शेखीबाज अहेरियों से भरा यह पिछड़ा गाँव किशनगढ़ प्रतीक है शोषण तंत्र का। किशनगढ़ के माध्यम से लेखक ने भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव की शोषण व्यवस्था, आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव, राजनीतिक पचड़े आदि की टोह ली है। यहाँ मनुष्य; मनुष्य का शिकार करता है। उपन्यास में रूपई सफेद पोश हिजड़े का प्रतीक है क्योंकि लेखक ने शोषकों को नपुंसक माना है जबकि दोहन-शोषण के खिलाफ संघर्षशील गरीब जनता के पुरुषत्व का गुणगान किया है। यहाँ हर अमीर गरीब का शोषण करता है, हर ताकतवर कमजोर का शोषण करता है। पूरा शोषक समाज छल-कपट तथा तृष्णा से भरा हुआ है। लेखक ने हरिया द्वारा किये जा रहे नकटा पक्षी के शिकार के तरीकों के माध्यम से सबल द्वारा निर्बल के शोषण पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है –"पहले वह एक नकटा को गुलेल से घायल करता फिर उसे सिर पर पगड़ी बाँधकर उसमें सजा लेता ताल में तैरते हुए वह खुद नकटा बन जाता। नकटा कांक-कांक कराह रही होती, दूसरी नकटा चिरइयों को लगता, यह तो अपना ही भाई-बंधु है जो मुसीबत में है, उससे क्या डरना और पकड़ ली जातीं। किसी को मारना हो उसके अपने बन जाओ – बस्स!"[2] उपन्यास में ज्योतिष बाबा छल-कपट और बेईमानी के बल पर ही भिखारी से जमींदार बन जाते हैं, गरीबों का खेत हड़प लेते हैं, थाना-पुलिस का भय दिखाकर राजा कक्का को बंधुआ मजदूर बना लेते हैं। अब यह गाँव की राजनीति बुझते, पान कूंचते, औरतों का आखेट करते हैं। राजा कक्का की पत्नी सोना का भी वे हाथ देखने के बहाने दैहिक शोषण करना चाहते हैं परंतु वह बेगारी करती सभी महिलाओं का प्रतीक बनकर बोलती है –"हाथे कइ रेखा तो तोहरे गोरून के गोबर पाथत खियाई गई बाबा! देखै का होय तो अपनी उपरी-चिपरी में से देखिलो छापि दिहे बाटी।"[3] इस तरह यह

---

2. *संजीव, 'अहेर', प्रथम संस्करण : 2014, ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या – 23*
3. *वही, पृष्ठ संख्या – 35*

शोषक तपका अपने सुख और वैभव के अभिमान में लिप्त सदियों से निर्बल, निःसहाय, दलित लोगों का भाग्य विधाता बने बैठा है। स्वार्थ-लोलुप शोषक प्रवृत्तियों के दमनकारी नीतियों के विरुद्ध शोषित, पीड़ित और दलित को लेखक चेतना संपन्न बनाना चाहता है। हदबंदी, ऋणमुक्ति और बंधुआ मजदूरों के मुक्ति जैसे मुद्दों को रूपई जैसा नेता गाँव में पनपने ही नहीं देता है। यह राजनीति में गुंडा तंत्र का उभार है। वह अपने आप को किशनगढ़ का सरकार घोषित कर देता है। और हल बंद करने वाले हलवाहों, मजदूरों और सामान्य जन को धमकाता है। एस.पी. और डी.एम. भी बिना उसके आदेश के कुर्सी पर नहीं बैठ सकते हैं।

उपन्यास में धार्मिक, आर्थिक, जातिगत और सांप्रदायिक शोषण के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई गई है। लेखक ने भी तथाकथित इन छोटी जातियों में एकता के अभाव को ही शोषक की सफलता का मूल आधार माना है। बाबा साहेब की वाणी भी इन्हें संगठित नहीं कर पायी –"लेकिन श्रम की इस परस्पर सहयोग की भावना ने कभी इन जातियों में एकता के तागे नहीं बांधे। चमारों के गुरु अलग हैं, अन्य जातियों के अलग, कंठी ले रखी है, मांस-मछली तो क्या लहसुन-प्याज तक खाना छोड़ दिया है। ब्रह्मचारी बाबा की चौकी कोई छू दे तो गालियों का आशीर्वाद लेकर आये लेकिन अब वही कहते हैं 'नेति धरम' तो छोट जतियन में ही रह गया है।"[4] ये शोषकों का चाल नहीं समझ पा रहे हैं। इसलिए इनको धर्म की जाल में फँसाकर इनका आर्थिक शोषण करते रहना बनियों की चाल है। वह देश में धार्मिक विद्वेष की भावना फैलाकर सांप्रदायिकता के आधार पर देश के विकास की गति को कुंद कर देना चाहते हैं। एक साथ ईद और दीपावली मनाने वाले लोग आज आपस में धर्म के नाम पर झगड़ रहे हैं। उपन्यास में जय और चाँदनी जाति-पाँति के इस बंधन का खंडन करते हैं। ब्राह्मण होते हुए भी जय एक निम्न जाति की लड़की चाँदनी से विवाह करता है। उनके घरों में चाय-पानी पीकर उनके अंदर आत्मविश्वास पैदा करने की कोशिश करता है। वह उनके अंदर चेतना जागृत करने का प्रयास करता है। कालू नामक एक छोटे जाति का पात्र भी वेश-भूषा की दृष्टि से

---

4. संजीव, 'अहेर', प्रथम संस्करण : 2014, ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या – 74

सवर्ण दिखता है और उसका स्पष्ट मानना है कि सामर्थ्यवान व्यक्ति की कोई जाति नहीं होती है। अतः लेखक का उद्देश्य इन वंचितों को आर्थिक विषमता मिटाने के लिए चेतना संपन्न करने की है। आर्थिक समानता ही जातिगत विषमता के दंश से मुक्ति दिला सकती है।

उपन्यास में शोषण की कई परतें हैं जिसमें एक ओर व्यवस्था द्वारा शोषण है तो दूसरी तरफ स्त्रियों का भी शोषण है। ब्रह्मचारी, ज्योतिष, ठाकुर, जमींदार, नेता सभी मजबूर स्त्रियों के साथ बलात्कार करते हैं। शिक्षित और जागृत हो रही महिलाओं से इसके खिलाफ आवाज उठाने की अपेक्षा है। उपन्यास में पति के सामने चाँदनी का बलात्कार किया जाता है परंतु उपन्यास के अंत में चाँदनी का इन शोषकों के प्रति आवाज उठाना आशा की एक नई किरण उदित करता है। शोषण का विरोध करने वाले जय का मानना है कि आजादी के बाद शोषक का सिर्फ रूप बदला है –"अंग्रेज चले गए मगर शासक बनने का सपना पाले ये नव अंग्रेज तो हैं। वही जगह है, वही मुकाम, सिर्फ वक्त के सूरज ने उन गोरे चेहरों को तनिक काला कर डाला है।"[5]

अतः किशनगढ़ के शोषक परंपरा के यथार्थ प्रस्तुति के माध्यम से पूरे देश में व्याप्त दमनचक्र का रेखांकन किया गया है। उपन्यास के माध्यम से पूरे देश में हो रहे आर्थिक, धार्मिक, जातिगत, सांप्रदायिक, व्यवस्थागत एवं नारी शोषण का मुद्दा उठाया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से संजीव देश में एक शोषण मुक्त समाज की कल्पना करते हैं।

सर्कस

'सर्कस' संजीव का दूसरा उपन्यास है। 1984 में भारतीय सर्कस के सौ वर्ष पूर्ण हुए और इसी वर्ष संजीव का उपन्यास **'सर्कस'** प्रकाशित हुआ। परंतु किसी भी दृष्टिकोण से यह उपन्यास व्यावसायिक नहीं है, बल्कि इसमें सर्कस के बाह्य चमक-दमक के साथ सर्कस की अंतरिम दुनिया, सर्कस कलाकारों की पीड़ा, शोषण, संघर्ष, सर्कस मालिकों की कुटिलता,

---

5. संजीव, 'अहेर', प्रथम संस्करण : 2014, ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या – 23

धर्म, मृत्यु, काम, भय, जोखिम और आकर्षण का जिस प्रकार वर्णन किया गया है वह अपने आप में इसे एक बेजोड़ उपन्यास सिद्ध करता है। साधारणतः लोग सर्कस के बाह्य एवं चकाचौंध भरी दुनिया से आकर्षित होते हैं परंतु वे सर्कस के भीतर की जलालत भरी जिंदगी को नहीं जानते। लोग उसके ग्लैमर, लाइट और साउंड को देखते हैं परंतु उस माइक की साउंड में दबती और घुटती हुई कलाकारों की सिसकियों को नहीं सुन पाते। संजीव ने पहली बार इस उपन्यास के माध्यम से जब इस अनछुए पहलुओं को छुआ तो वह खुलता ही चला गया और उसमें न जाने कितनी रीता, कामिनी, चंद्रा जैसी लड़कियाँ समाती ही चली गईं। सर्कस में उपस्थित बाघ, शेर भी कभी-कभार एकाध कलाकार को चट कर जाते हैं, परंतु नियोगी जैसे सर्कस मालिकों के जबड़े में तो न जाने कितनी रीता जैसी कलाकार चट होने के लए फँसी रहती है। कई कलाकार स्टंट में घायल होकर अपाहिज बनकर दूसरे के आसरे पर जीने के लिए बाध्य हैं। कलाकारों को एक बाड़े में बंद कैदी जैसा जीवन बीताना पड़ता है, वाह्य जगत के यथार्थ से उनका साक्षात्कार ही नहीं हो पाता है। कई कलाकारों का तो जन्म और शादी ब्याह भी सर्कस के अंदर ही हो जाता है। उपन्यास में भावुकता के इतने क्षण हैं कि पाठक स्वयं भावुक हुए बिना नहीं रह सकता क्योंकि इसके पहले किसी भी उपन्यासकार का इस विषय की ओर ध्यान नहीं गया था। परंतु संजीव सजग हैं, उन्होंने भावुकता का प्रसंग तो रचा है परंतु इस भावुकता में वे स्वयं बहे नहीं हैं, बल्कि शोषण तंत्र के खिलाफ वे मुखर दिखते हैं जो इस उपन्यास की प्रासंगिकता बनकर उभरी है।

उपन्यास का शुरुआत फ्लैशबैक पद्धति में होता है जहाँ आँधी, तूफान, बारिश के झंझावत में *'कामिनी कला मंदिर'* नष्ट हो जाता है। कामिनी को उसके पति विकास और पुत्री कृति की चिंता होती है और इसी क्रिया में वह अपने जीवन के आरंभिक दिनों को स्मरण करने लगती है।

'द हॉक' सर्कस के जोकर रामू दादा की बेटी है झरना। सर्कस जब भारत भ्रमण करते-करते उनके इलाके में पहुँचा तो वह पिता के साथ लग गई। सर्कस देखने आयी झरना पिता के लाख समझाने पर भी घर वापस नहीं लौटी और इस प्रकार बाल कलाकार के रूप में उसने

अपना सर्कस का जीवन शुरू किया। शुरू-शुरू में तो सब कुछ बहुत आकर्षक लगा परंतु जल्द ही इस ग्लैमर और चकाचौंध भरी दुनिया से मोह भंग हो गया। उसे अब अपनी जिंदगी बंदिनी-सी लगने लगी। शुरू में अपने पिता को लेकर उसके दिल में बहुत महत्वाकांक्षा थी परंतु सर्कस में जोकर का अभिनय करते और बौने कलाकारों से अपने पिता को पीटते देख उसका दिल टूट गया। सर्कस के अधिकांश कलाकार अशिक्षित और असंगठित हैं, उनके अंदर अपने शोषण के विरुद्ध बोलने की क्षमता नहीं है। संजीव ने कलाकारों के शोषण के माध्यम से पूरे देश की गूँगी जनता को रेखांकित किया है –"सभी हिजड़े हैं, मैं भी। यह पूरा देश हिजड़ा है।"[6] अगर ऐसा नहीं होता तो पूरे देश के संसाधन का नब्बे प्रतिशत हिस्सा मात्र 10 प्रतिशत लोगों तक सीमित क्यों रहता? बुलबुल दा बाघों, सिंहों को ट्रेनिंग देते हैं, वे कहते हैं सारा खेल पेट का है, बाघ हो या इंसान, उसे भूखा रखो और सारा कार्य-व्यापार करवा लो। कितने नौजवान पढ़-लिखकर दो रोटी के लिए दर-दर भटक रहे हैं, कितने मेहनतकश श्रमिकों को उनका पारिश्रमिक नहीं मिल पा रहा है। रोटी, कपड़ा और मकान का लालच दिखाकर राजनेता हमारी युवा पीढ़ी को अपनी सुविधा अनुसार नचा रहे हैं और पूरा देश पेट की आग के कारण कुछ प्रतिशत पूंजीपतियों और राजनेताओं के हाथों का कठपुतली बना हुआ है। परंतु यह इंसान भी विचित्र प्राणी है जब तक उसका पेट खाली रहता है वह सब काम करता है, परंतु ज्यों ही उसका पेट भर जाता उसको शरारत सूझता है और इस शरारत की आग में सीधे-साधे निस्सहाय लोग जलते हैं जबकि जानवर भूख मिट जाने के बाद शांत हो जाते हैं। इस प्रकार शेर से भी खतरनाक जीव है इंसान, जो कभी शांत नहीं होते–"इनसान हो या जानवर, टरेनिंग देने का एक-इ कायदा है – भूखा रखो। उसका सारा दिमागी शैतानी भूख पे लाकर तोड़ दो फिर अइसा ललचाओ, अइसा कि उसको लगे, तुम उसका सच्चा हमदरद है। तोड़ते रहो अइसा, तोड़ते रहो...।"[7] इसलिए राजनेता जानते हैं कि जनता के पास समस्या बरकरार रहनी

---

6. *संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 20*

7. *वही, पृष्ठ संख्या – 26*

चाहिए, अगर वे सारी समस्याओं का समाधान कर देंगे तो उनकी तो पूछ ही नहीं रहेगी। इसलिए जनता भूखी, नंगी रहनी चाहिए और इस भूखी, नंगी जनता के सामने चुनाव के समय राजनेता सब्सिडी के भीख के रूप में दो रुपया किलो चावल, गेहूँ आदि फेंककर उनका सबसे बड़ा हिमायती बन बैठते हैं। यहाँ मनुष्य के चरित्र का भी उद्घाटन है क्योंकि जानवर पेट भर जाने पर अहिंसक बन जाता है जबकि इंसान और हिंसक।

सर्कस के अंदर कलाकारों की जिंदगी एक बंधुआ मजदूर के जैसी है। लड़कियों का शारीरिक और मानसिक शोषण होता है। चंद्रा जैसी लड़कियों को उम्र से पहले ही बड़ा कर दिया जाता है –"बहन ...तुझे क्या बताऊँ, रात-दिन मैं किस असुरक्षा के बीच घिरी पाती हूँ अपने को। अनाथाश्रम से खरीदकर ले आए हैं नियोगी साहब। अब उन्हें रीता भा गई है तो रघुनाथ ने लपक लिया है मुझे।"[8] कई बार लड़कियाँ छिप-छिपाकर इस बंधन से चंद्रा जैसी भाग निकलतीं और कई बार रीता जैसी फँसी रहतीं। कामिनी सोचती है वह खुद क्या है? उसका अस्तित्व क्या है? 'होराइजन सर्कस' में आग लगने के उपरांत उसे फिर से खड़ा करने के लिए, उसे छः महीने के लिए उसमें जाना पड़ा। *'सर्कस ओनर्स एसोसिएशन* का यह निर्णय था। सर्कस मालिकों की इस बैठक में *'ट्रैवेल कन्सेशन', 'कलाकारों के लिए एल.आई.सी. की सुविधा', 'हैंडीकैप्ड्स पेंशन स्कीम'* इत्यादि मुद्दों पर भी बातचीत होती है। परंतु इस न्यू होराइजन में उसे इब्राहिम खाँ जैसा एक नया अभिभावक मिला जिन्होंने उसे जीवन के बहुत से गुण सिखाये। श्रम का महत्व और सही मार्ग दर्शन समझाया। कामिनी के यह कहने पर कि इस सर्कस में भी नया क्या है? रिंग तो वही है, इब्राहिम खाँ ने कहा –"बेटी, ज़िंदगी भी तो वही है, उतनी ही है, फिर भी कोई भगत सिंह बनता है, कोई नादिरशाह, कोई ज़ेनिथ है तो कोई एवरेस्ट।"[9] खाँ साहब ने कामिनी के पिता रामू दादा को भी कैशियर की जिम्मेदारी देकर उनको इज्जत बख्सी थी। इसीलिए तो छः महीने बाद जब उसे एवरेस्ट में वापस लौटना पड़ा

---

8. *संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 36*

9. *वही, पृष्ठ संख्या – 43*

तो बेटी की विदाई-सा माहौल था। परंतु अब *'एवरेस्ट'* भी बदल रहा था, नियोगी उसे ऊँचाई पर ले जाना चाह रहा था, इसी क्रम में उसने एक लैडर बैलेंसर जैनुल को शामिल किया था जो कामिनी की तरफ आकर्षित था। इस लैडर बैलेंसिंग में नियोगी आर्केस्ट्रा संगीत को शामिल करना चाहता था। वह बैंड मास्टर को यह कहकर डाँट देता है कि यह कोई शास्त्रीय संगीत का जगह नहीं है यहाँ *'रॉक-न-रोल', 'कैबरे'*, इत्यादि संगीत बजाइए। संजीव कहते हैं कि कलाकार भी अपने संगीत कला के प्रति स्वतंत्र नहीं है, उसे भी अपने मालिक और बाजार के अनुरुप ढलकर संगीत बजाना पड़ता है। यहाँ संगीत की गरिमा नष्ट हो जाने से किसी को कुछ लेना-देना नहीं है।

कामिनी अपने प्रति जैनुल के आकर्षण से भी सजग है। वह यह अच्छी तरह से जानती हैं कि वह हिंदू है और जैनुल मुसलमान। समाज में तो हम कलाकारों का यूँ ही कोई मान-मर्यादा, इज्जत नहीं है, रूपा, बुलबुल दा और सोहन लाल जैसे कलाकार घर वापस नहीं जाना चाहते हैं क्योंकि उनके घर वापस लौटने से घर वालों की बदनामी होती है। ऐसे समाज में एक हिंदू लड़की और मुस्लिम लड़के के प्रेम संबंध का क्या भविष्य है? जैनुल उसे समझाने का प्रयत्न करता है कि यह जाति-पाति की दीवार कमजोर और बुजदिलों के लिए होती है परंतु कामिनी उसका प्रति-उत्तर देती है –"जैनुल जी, काश जिंदगी सर्कस होती! समाज में तो हम एक खरगोश से भी गए-बीते हैं। वे पिलपिले आदमी, जो बाघ की एक दहाड़ से ही पैंट खराब कर लें, वहाँ चौधरी जी बनकर निर्णय देते हैं और हम कान-पूँछ गिराकर उसे मान लेते हैं।"[10] खैर कामिनी क्या मना करती इस प्रेम प्रसंग का भनक ज्यों ही नियोगी को लगा उसने लैडर बैलेंसिंग के खेल से कामिनी को हटाकर उसकी जगह नासिरा का प्रवेश करा दिया और कामिनी को दुर्गा का रोल दे दिया। जैनुल को जगह-जगह अपमानित किया। वह जानती है कि सर्कस में किसी के श्रम का कोई इज्जत नहीं है। उसे याद है इब्राहिम चाचा की वे बातें जिसमें वे मानव श्रम को उचित पारिश्रमिक दिलाना चाहते हैं, सर्कस के फन को उचित स्थान दिलाना

---

10. संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 51

चाहते हैं। परंतु सर्कस के कलाकारों के अंदर निराशा का भाव है, तभी तो रानी कहती है - -"इस दुनिया की तह में एक और दुनिया है सूखी, चीमड़, गंदी। पुलों के नीचे, बस्ती में, गटर में, प्लेटफार्मों पर, बाजारों में लावारिश पड़े लोग। पढ़-लिखकर भटकते, ज़हर खाते होनहार युवक, खुदकुशी करती औरतें, जीने के लिए एक से बढ़कर एक जहालत कबूल करनेवाले लोग। तू श्रम की बात करती है, मैं कहती हूँ कहाँ नहीं है श्रम की बेइज़्ज़ती? जो यह कहते हैं कि श्रम का कोई विकल्प नहीं है, या तो बेवकूफ हैं या वरगला रहे हैं, ऐसा होता तो कामचोर राज न करते। हाँ!"[11] संजीव कहते हैं कि यह संसार का नियम है कि यहाँ हर ताकतवाला कमजोर पर हँसता है, हर अमीर गरीब पर हँसता है, हर पढ़ा-लिखा अनपढ़ पर हँसता है। परंतु इससे भी बड़ी विड़बना यह है कि हर दबाया-सताया हुआ इंसान अपने समान शोषित इंसान को देखकर उससे घृणा करता है। शोषित लोगों में संगठित होने का जज़बा ही नहीं है, तभी तो एनाउंसर अभिजित जब श्रमिक युनियन बनाने की बात करता है तो अपने लोग ही नियोगी का कान भर देते हैं, और अभिजित की सर्कस कंपनी से छुट्टी कर दी जाती है। इब्राहिम खाँ *'सर्कस ओनर्स एसोसियशन'* की मिटिंग में भी श्रमिक युनियन के पक्ष में अपना तर्क रखते हैं –"अपनी समस्याओं, अपने अधिकारों के लिए हम यहाँ मिल बैठे हैं, तो कुछ भी बुरा नहीं लगता हमें, वहीं सर्कस के आर्टिस्ट, ट्रेनर और मजदूर को इस काम के लिए हम गलत करार कर देते हैं।"[12]

सर्कस के अंदर भी सरवाइवल और एग्जिस्टेंस का सवाल है तभी तो जेनिथ में आने पर कामिनी को चेलम्मा और मिनाक्षी की जगह शीश महल का रोल दे दिया गया क्योंकि वह अपेक्षाकृत ट्रेंड और सुंदर है। सर्कस के कलाकारों का हमारी जनता से यह शिकायत है कि जनता उनकी मेहनत, कला और जोख़िम से भरे स्टंट को कमकर आँकती है, जबकि फिल्मी दुनिया के नकली स्टंटबाजों पर दिलो-जान से फ़िदा रहती है। भारतीय सिनेमा की यह विडंबना

---

11. संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 60-61

12. वही, पृष्ठ संख्या – 68

है कि यहाँ नायक को सर्वशक्तिमान दिखलाया जाता है जो कि यथार्थ से कोसों दूर है– "हरामख़ोर, तुम्हारी दिलेरी और मसीहाई के नाटक पर अंधी पब्लिक कूल्हे मटकाते हुए ताली पीट सकती है, मगर हमें तुम्हारी हकीकत मालूम है। साले तस्करों के गुलाम, इनकमटैक्स चोर, कमीने, ऐयाश - वतन पर मरनेवालों का रोल करेंगे...।"[13] परंतु सर्कस में भय, मृत्यु, जोखिम और आकर्षण का उपयोग होता है। सिर्फ सर्कस कलाकारों के अंदर नहीं बल्कि सर्कस व्यवसाय के अंदर भी प्रतियोगिता है। तभी तो नियोगी दूसरे सर्कस के अच्छे कलाकारों को फोड़कर अपने सर्कस में शामिल करके फलता-फुलता रहता है जबकि इब्राहिम खाँ जैसे सर्कस मालिक अपनी आदर्शवादिता के कारण डूब जाते हैं। तभी तो इब्राहिम खाँ कहते हैं– "हम जब तक सेल्समैन बने रहेंगे, एक-दूसरे से कम्पिटीशन के टकराव में सिर फुटाते रहेंगे तब तक बकवास है सब। आप कोऑपरेशन के प्लेटफार्म पर आइए, हम वहाँ पहले से मौजूद मिलेंगे। वरना असंगठित मज़दूरों का ही हश्र होता रहेगा हमारा।"[14]

परंतु क्या करें? जानवर इंसानों की बातों से ट्रेंड होकर इंसान बनते जा रहे हैं और इंसान में पशुता के गुण आते जा रहे हैं। वह धड़ल्ले से छल, बल, कल का कारोबार कर रहा है। तभी तो नियोगी जैसा धूर्त सर्कस मालिक सैंड साहब जैसे बड़े सर्कस मालिक को थ्री रिंग के जाल में फँसा लेता है। वह उन्हें 'जेनिथ' को बुलंदी पर पहुँचाने के सम्मोहन में फाँसता है, इब्राहिम खाँ सैंड साहब को सचेत करते हुए भारत के लिविंग स्टैंडर्ड को हवाला देते हैं। उनका मानना है कि भारत जैसे देश में जहाँ की आर्थिक स्थिति विपन्न है, एक दिन की पूरी कमाई होम करके सर्कस का दर्शक जुटा पाना एक चुनौती का कार्य है। वे सैंड साहब के शुभ चिंतक हैं तभी तो कहते हैं –"अब इसका दूसरा पहलू सोचो, हिंदुस्तान के लाखों कस्बे, मेले-ठेले छोटी पार्टियों के लिए छोड़ रहे हो, जहाँ से तुम सरवाइव कर सकते थे। मत भूलों कि 'ज़ेनिथ'

---

13. *संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 107*

14. *वही, पृष्ठ संख्या – 126*

का गोल्डन पीरियड नहीं है अब। वे आर्टिस्ट जा चुके हैं, कुछ जो हैं और कुछ फॉरेन टूर का हौवा – यही, सिर्फ यही पूँजी है।"[15] परंतु नियोगी सैंड साहब को अपने जाल में फाँसने में सफल हो जाता है और 'ज़ेनिथ' डूब जाता है। सारे कलाकार अनाथ होकर इधर-उधर बिखर गए। पशु भी अलग-अलग मालिकों के भेंट चढ़ गए। कहाँ जाए कामिनी? *'गोल्डन ईगल', 'इस्टर्न स्टार', 'एवरेस्ट', 'ताज'* का प्रस्ताव ठुकरा कर चुपचाप संधु दी के कमरे में बैठी थी वह। यहीं उसकी मुलाकात रिक्शा चलाते हुए हिजड़े सुगिया से होती है, यह वही सुगिया है जिसके रूप पर वह स्वयं कभी मुग्ध थी। आज उसका यह हस्र। वह इस बात को समझती है कि जो कभी शीर्ष पर पहुँचता है उसे गर्त में गिरना ही पड़ता है इसलिए संधु दी के प्रस्ताव पर वह पेंटर विकास से विवाह करती है। विकास वही पेंटर है जो कामिनी के प्रेम में मेले-दर-मेले भटकता रहा और उसके प्रत्येक रूप झरना, गीता, सुजाता, कामिनी, भैरवी का मूर्ति गढ़ता रहा परंतु यह भी सत्य है कि *'मिलन अंत है प्रेम का'*। विकास *'कामिनी कला मंदिर'* के कार्य में इतना व्यस्त हो गया कि वास्तविक कामिनी ही उपेक्षित होती चली गई। अब वह अकेली घुटती रहती। तो क्या स्त्री वास्तव में खाद ही है जिसका फसल उगाने के सिवा औचित्व ही नहीं। संधु दी कहती हैं –"विवाह हमारी शारीरिक ज़रूरत और बच्चों के भविष्य के लिए हम पर आरोपित की हुई एक अननैचुरल कंडिशनिंग है।"[16] वह इस कंडिशनिंग को स्वीकार नहीं करती है। संधु दी का बैलेंस बनाने का फार्मूला भी काम नहीं आता है। दरारें बढ़ जाती हैं, और खाई बन जाती है पर जिंदगी कहाँ थमती है। वह विजय सर्कस के ट्रेनर के रूप में दुबारा जिंदगी शुरू करती है। उपन्यास के अंत में एक नया शुरुआत देखने को मिलता है जब वह संधु दी के साथ जनता को अपने हक की लड़ाई लड़ने को प्रेरित करती है। वह कहती है कि आप के हक का अन्न सेठों और बिचौलियों के गोदामों में पड़े सड़ रहे हैं। कब तक आम जनता जमूरा और दर्शक बना देखती रहेगी?

---

15. *संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 151*

16. *वही, पृष्ठ संख्या – 177*

सावधान! नीचे आग है :

यह संजीव के उपन्यास क्रम का तृतीय उपन्यास है जिसका प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन के द्वारा 1986 में हुआ था। दामोदर नदी के तट पर बसे हुए कोयलांचल क्षेत्र को इस उपन्यास के कथा का आधार बनाया गया है। पूरा क्षेत्र जमीन के अंदर कोयला से अटा पड़ा है और कोयले के अंदर आग है। यह आग यहाँ के गरीब मजदूरों को अपने आँच से विभिन्न रूप धरकर मसलन : शोषक, सूदखोर, ठेकेदार, रौबदार, भ्रष्टाचारी इत्यादि से जला रही है। इन कोयला खदानों में सुरक्षा के नियमों की अनदेखी की जाती है और मजदूरों को मौत के खदान में उतार दिया जाता है। कोयला खादानों के अंदर घटने वाली दुर्घटनाओं से रेस्क्यू के लिए भी हमारे पास अत्याधुनिक उपकरण नहीं है, यही कारण है कि चंदनपुर के कोयला खादान में जब पानी भर जाता है तो इक्कीस दिन तक रेस्क्यू चला कर भी एक भी मजदूर को बचाया नहीं जा सका। मौत का वह खौफनाक मंजर उपन्यास पढ़ने के बाद आँखों के सामने तैरने लगता है। जबकि जर्मनी में इस प्रकार की दुर्घटना होने पर सारे मजदूरों को सुरक्षित बाहर निकाल लिया जाता है। चंदनपुर के खदानों से किसी भी श्रमिक को जीवित बचाकर नहीं निकाल पाने और रेस्क्यू को देर से शुरू करने में कहीं न कहीं मैनेजमेंट का षड्यंत्र नजर आता है ताकि मृतकों की सही संख्या और दुर्घटना का प्रमुख कारण लापरवाही और भ्रष्टाचार संसार के सामने उजागर न हो जाए। कोयला ही हमारी प्रमुख खनिज संपदा थी और इस संपदा पर वहाँ के निवासियों का जो अधिकार था उन्हें उससे वंचित कर उसे विभिन्न पूंजीपतियों को दे दिया गया। इसी से यहाँ के लोगों में से भी कुछों ने उसे अनैतिक तरीके से लूटना शुरू कर दिया और यहीं से माफिया गिरी की जो शुरुआत हुई, वह यहाँ के लोगों के जीवन को नर्क के गर्त में ढकेल दिया।

उपन्यास को फ्लैशबैक, डायरी और वर्णात्मक पद्धति में लिखा गया है। उपन्यास की शुरुआत ही चंदनपुर खदान दुर्घटना से होती है जिसमें करीब सौ मजदूर फँस जाते हैं। ऊधम सिंह सहित तेरह मजदूर इस जल प्लावन में ऐयर पॉकेट बनने के कारण लगभग उन्नीस दिन तक सुरक्षा कवच पा गए थे परंतु रेस्क्यू में देरी के कारण उनको भी धीरे-धीरे प्राण से हाथ धोना पड़ा। ऊधम सिंह यहीं डायरी लिखता है जिसके तार को बाद में उसका मित्र आशीष

जोड़ता है। उन्नीसवें दिन खदान से पानी पंप होने तक ऊधम जीवित था, ऐसा डायरी से पता लगता है। एयर पॉकेट के अंदर फँसा ऊधम सिंह जब यह समझ जाता है कि मौत का फँदा उसके गले के इर्द-गिर्द जकड़ रहा है तो वह नौ मास पूर्व के उन दिनों को याद करने लगता है जब वह धुआँसे से भरे इस कोयलांचल में अप्रेंटिसशिप का टेस्ट देने के लिए प्रवेश करता है। कोयले के अंबार और गंदे पानी के नाले से गुजरते हुए उसे झरिया के कोयलांचल में होने का एहसास हो जाता है –"आग की नदी दामोदर और धुआँसे का शहर झरिया! कुआँसा नहीं धुआँसा! धूल, धुआँ और कुहासा– इनसे मिलकर एक शब्द बनता है धुआँसा। इस धुआँसे के जाल में उलझ तारों की झिलमिलाहट लिये जल रही हैं दूर-दूर की बत्तियाँ! दोनों ओर खंड-खंड जुड़ते-टूटते हार्ड-कोक प्लांट की दैत्यमुखी ज्वाला की क़तारें। बीच-बीच में लोहे के लंबे साँचे पर टँगी आकाश चरखी से कोलियारियों के टॉप गियर, कोयले के स्तूपाकार मलबे और ढूहें। श्मशान की चिता की तरह जगह-जगह जलते कोयले। विशाल खात-गह्वरों में कसमसाती पोखरिया खादों के मलबों से झनकारता झाँय-झाँय सन्नाटा। जहाँ-तहाँ रेललाइनों के जाल, पंक्ति-पंक्ति खड़ी मालगाड़ियाँ, उच्छ्वास फेंकते स्टीम इंजन, डिब्बीनुमा मकान और सर पर रह-रहकर काले खौफ़नाक परिंदे-सी गुज़रती रोप-वे की डोलियाँ।"[17] कई गलियों-उपगलियों, पतली पुलिया से गुजरता हुआ उसका ट्रक चंदनपुर पहुँचता है – एशिया का आधुनिकतम खदान। संजीव यहाँ झरिया के परिवेश का वर्णन करते हैं –"इन्हीं बिल्डिंगों, बाज़ारों, बियाबानों के तले हज़ारों फ़ीट नीचे से उबलकर वह भीड़ ट्रकों पर सवार हो गई होगी यकायक। लाखों वर्षों के जीवाश्म उसके नीचे। इन्हीं जीवाश्मों की काली-काली पट्टियों की सुरंगों की भूलभुलैया में चीटों की तरह रेंग रहे होंगे अभी भी हज़ारों खान मज़दूर।"[18] कोयले कंकरिट के अंबार तथा धूल के बगूले के कारण पशुओं के चरने लायक जंगल भी नहीं बचे हैं और पशु कुपोषण के कारण ठूँठ होते जा रहे हैं। मजदूर जीवन भर कोयले की धूल फाँकने के

---

17. *संजीव, 'सावधान! नीचे आग है', पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 14*

18. *वही, पृष्ठ संख्या – 15*

कारण बीमारी से ग्रस्त होते जा रहे हैं –"सैंडनूमोकोनियोसिस, ऊधम बुदबुदाता है, "एक महीने में 58 किलो कोल डस्ट यानी साल में सात क्विंटल यहाँ हर आदमी फाँकता है।"[19] क्षेत्र में रोजगार का भीषण अभाव है जो थोड़ी बहुत मजदूरी ठेकेदारों के अंदर बची है उन पर भी ठेकेदार पुरुषों की जगह महिलाओं को प्राथमिकता देते हैं, ताकि किसी प्रकार की प्रतिरोध या स्ट्राइक से भी बचे रहें और महिलाओं का शारीरिक और मानसिक शोषण भी कर सकें। अगर कभी पुरुषों को काम मिलता भी है तो मजदूरी में उन्हें शराब पिला दिया जाता है और अब शराब का दाम ज्यादा बताकर उल्टे उन पर कर्ज लाद दिया जाता है। गरीबी का आलम यह है कि जलते चूल्हे को देखकर जब आशीष रायपुरिया से पूछता है कि क्या ये हमेशा ऐसे ही जलते रहते हैं तो वह कहता है –"हमेशा ही समझ लो, साब! कोइला की कमी थोड़े है हियाँ! कब कौन खट के आएगा, कोई ठीक तो है नहीं। जब चाहो, दाल बना लो, जब चाहे, भात -- सवाल कोइला का थोड़े है, सवाल है राँधे क्या...? कहाँ से ले आएँ...?"[20]

जब से इन कोयला खादानों का राष्ट्रीयकरण हुआ है, तब से ठेकेदारों और माफियाओं की संख्या और बढ़ गई है। सारे ठेकेदार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी युनियन के आदमी हैं। तो श्रमिक अपनी फरियाद लेकर किस श्रमिक संगठन के पास जाए। अलग-अलग श्रमिक संगठन आपस में श्रमिकों को लड़वाकर उनका शोषण करते रहते हैं, खदानों से ट्रक के ट्रक कोयला अवैध रूप से माफियाओं द्वारा हड़प लिया जा रहा है –"कृष्णा सुंदरी को अब दुर्योधनों-दुःशासनों का दल ट्रकों पर अपहरण करके ले जा रहा है। यह करोड़ों रुपयों का रोप-वे किस काम का...? माफ़िया का वो टेरर है कि कोई चूँ तक नहीं करता।"[21] और इन्हीं चोर-लुटेरों, गुंडों के अंचल में माँ के बार-बार रोकने के बावजूद भी इसे आना पड़ा है। यह वही कोयलांचल है जहाँ उसकी बहन जसवंत को गुंडे उठा ले गए थे, यह वही कोयलांचल

---

19. *संजीव, 'सावधान! नीचे आग है', पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 21*

20. *वही, पृष्ठ संख्या – 18*

21. *वही, पृष्ठ संख्या – 27*

है जहाँ अनपढ़ और गँवार लोग युनियन चलाते हैं और पढ़े-लिखे मैनेजर उनसे थर-थर काँपते हैं। ऐसे माहौल में एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति अपने को कैसे फिट बैठा पायेगा?

वास्तव में पूरा खदान ही अप्रत्यक्ष रूप से माफिया सरदार, कन्ट्रेक्टरों के रूप में चलाते हैं। युनियन, महाजन, शराबखाना और पुलिस प्रशासन सब इन्हीं के हैं। मैनेजर, एजेंट आदि इनके इच्छा के गुलाम हैं। ऐसी स्थिति में खदान से नियम के मुताबिक कोयला निकालने की उम्मीद बेमानी है। बिना सेफ्टी मेजर के अधिक से अधिक कोयला निकालने की होड़ मची है। यहाँ तक कि रिक्त स्थानों में बालू रिफिलिंग की भी अनदेखी की जाती है जिनसे उन रिक्त स्थानों में गैसों के जमाव का खतरा हर समय बना रहता है। यह साधारणत: मिथेन गैस होता है जो वायुमंडल के ऑक्सीजन से संपर्क में आने पर आग के गोले में बदल जाता है। हमारे देश में इन गैसों का इंधन के रूप में सही उपयोग की तकनीक अभी तक विकसित नहीं है जिसके कारण हमारी इतनी खनिज संपदा न ही सिर्फ नष्ट होती है बल्कि दुर्घटना का कारण भी बनती है। इन खदानों का क्षेत्रफल बढ़ाने के चक्कर में ये माफिया-मैनेजमेंट की जोड़ियाँ आदिवासियों की जमीनों पर कब्जा किये जा रहे हैं। इन भूमि अधिग्रहणों के मुआवजे, उनके लिए स्वच्छ जल उपलब्ध करवाने और उनके बच्चों के लिए स्कूल उपलब्ध करवाने जैसी वायदों से मैनेजमेंट मुँह मोड़ लेती है। आदिवासियों में शिक्षा और एकता के अभाव का वे भरपूर लाभ उठाते हैं और उनके आंदोलन को दबाने में साम, दाम, दंड भेद की नीति अपनाते हैं। तभी तो अंगारडिहा का आदिवासी झानू जब चंदनपुर के लोगों से आंदोलन के लिए मदद मांगने आता है तो वृद्ध रामप्रसाद ओझा कहते हैं –"हमसे जो बन पड़ेगा, करेंगे, मगर तुम लोग हियाँ की आसा में मत बैठे रहो, कमिसनर साहेब से कहो। हियॉ पे सब ज्ञान-पापी हैं, कुछ लोग तो हमरो से जियादा हुशियार हो गए हैं – खंड-खंड लड़ाई लड़ेगा, खंड-खंड स्वारथ के लिए, खंड-खंड़ मौवत मरेगा –कुत्ता का मौवत!"[22] यहाँ तक कि खदानों में रखे गए अप्रेंटिस नौजवानों से भी मजदूरों का काम लिया जाता है। यह अप्रेंटिस के नाम पर शोषण का मामला

---

22. *संजीव, 'सावधान! नीचे आग है', पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 50*

सिर्फ खदानों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह भारतवर्ष के विभिन्न कारखानों, कारपोरेट जगत, आई.टी. सेक्टर से लेकर सरकारी कार्यालयों तक फैला है। मैनेजमेंट यह अच्छी तरह समझता है कि इन अप्रेंटिसों को विरोध करने का अधिकार नहीं है अगर वे विरोध करें तो उन्हें बाहर का रास्ता भी दिखाया जा सकता है जबकि मजदूर यह समझते हैं कि इन अप्रेंटिसों की वजह से उनकी रोजी-रोटी खतरे में है और वे एक-दूसरे से लड़ते रहते हैं और मैनेजमेंट ऊपर बैठकर तमाशबिन बना इसका फायदा उठाता रहता है। झानू इस बात का समझता है तभी तो वह मजदूरों को संबोधित करते हुए कहता है –"काल हमरा गाँव अंगारडिहा में हम लोग से मैनेजमेंट में झगड़ा हुआ तो हमारा खिलाफ लड़ने को कौन गया –हियाँ का मजूर। आज ऊ मजूर का ओ.टी. और एक्टिंग का सवाल आया तो उसका खिलाफ किसको ठेला गया– अपरंटीस। काल अपरंटीस को सज़ा देना होगा तो किसको अपरंटीस के खिलाफ खड़ा करेगा- - असिस्टेंट मैनेजर और ओवरमैन को, शॉट फ़ायरर को? हम पूछता– कोई नीयम-कानून भी है कि सिरिफ ये – ई फूट डालो और राज करो।"[23]

विष्टु दा, मकबूल साहब, मुकुल दा, आशीष श्रमिकों के बीच ऐसे लोग हैं जो शोषण, अत्याचार और अनाचार के विरुद्ध हैं, ये विचारशील लोग हैं। परंतु शोषण का मकड़जाल ऐसा है कि वे कोई सार्थक कार्य नहीं कर पाते हैं। विष्टु दा स्वयं ऊधम को सैंतालिस डिग्री संटीग्रेड तामपान वाले संकरी पथ के काल-कोठरी में डी-वाई-थ्री आयतन की गैस की जाँच करने भेजते हैं। वे न तो जोखू की पेंसन बचा पाते हैं और न ही श्रमिक स्त्रियों की अस्मिता को। कुछ सचेत युवक अपना कोल डिपो खोलने की कोशिश करते हैं तो चंद्रकिशोर सिंह ठेकेदार की ओर से उनको धमकी मिलती है। महाजन इन श्रमिकों का लिफाफा पे-काउंटर पर से ही हथिया लेता है। उपन्यास में पेमेंट के दिन महाजन के भय से भागते हुए हेमब्रम को पकड़कर, महाजन रामबुझारत सिंह के सामने पेश किया जाता है जहाँ वह लात और गाली से उसका स्वागत करते हुए उसकी मजदूरी को छीन लेता है। दूसरी बार वह श्रमिक हेमब्रम

---

23. संजीव, 'सावधान! नीचे आग है', पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 55-56

अपना पैसा तिवारी द्वारा छीने जाने के भय से खदान के एक्सटेंशन भाग में छुपा हुआ है। खदान में पानी रिसने पर जब कुछ मजदूर वहाँ आते हैं तो वह डर जाता है। मजदूरों के यह बताने पर कि खदान में पानी फूट गया है भागो। वह राहत की सांस लेता है, चलो तिवारी तो नहीं आया। पानी ही फूटा है न। अर्थात् मौत से भी बड़ा है महाजन का आंतक। विष्टु दा जैसे विचारशील लोग कोयलांचलों के इन कुसंस्कारों का कुछ नहीं बिगाड़ पाते हैं।

ऊर्जा मंत्री के आगमन पर ठेकेदारों के ट्रकों के लिए जानबूझ कर बंद रखी गई सारी डोलियों, मशीनों को चालू कर दिया जाता है। सिंह जी के ट्रक बेकार पड़ी रह जाती है। वह भट्ट और चटर्जी साहब को आकर प्यार से धमकाते हैं कि अगर खदानों में उनको नये ठीके नहीं दिये गए, उनके ट्रकों को बेकार कर दिया गया तो वे आदिवासियों और गाँव वालों को मैनेजमेंट के खिलाफ भड़काकर, आपको नोचवा देंगे। सारे ठेकेदार एक जगह मीटिंग करके यह निश्चय करते हैं कि मैनेजमेंट के लोगों को एक जलसे में बुलाकर उनका खातिर-सत्कार किया जाए। यहाँ इनके स्वागत के लिए पूजा के प्रसाद के रूप में सुरा, सुंदरी, साज का प्रबंध किया जाए।

मजदूरों के पेमेंट के दिन उनकी पत्नियों के साथ-साथ उनके पावनेदारों को पहले याद रहता है। लिफाफा पाते ही अभी गिनना भी शेष नहीं होता है कि घेर लेते हैं महाजन। बबन साव को जब पी.एफ और ग्रैच्युटी का कुल 28936 रुपया मिला तो सारे महाजन घेर लिये। ऊधम के विरोध करने पर चौधरी दा ऊधम को दूर खींच ले गए और समझाया कि इन महाजनों से अकेले उलझना मूर्खता है –"मुश्किल से हज़ार-पाँच सौ लेके जा पाया तो बड़े भाग्य। सब छीन लेंगे कुत्ते यहीं।"[24] विष्टु दा ने भी स्टेट्समैन के हवाले से आँकड़े दिये कि –"धनबाद और आसनसोल का इलाक़ा दुनिया का सबसे गंदा इलाका है। जितने चोर, जुआरी, बलात्कारी, ख़ूनी हैं, सारे-के-सारे अपराधियों का अभयारण्य!"[25]

---

24. संजीव, 'सावधान! नीचे आग है', पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 104

25. वही, पृष्ठ संख्या – 105

संजीव ने इन इलाकों में छठ पूजा की महिमा का भी बखान किया है जो इनके अंदर फैले अंधविश्वास को दर्शाते हैं। खैर छब्बीस-सत्ताइस दिसंबर की वह मनहूस काली रात भी आती है जो अपने जल प्रलय में पूरा खदान सहित सैकड़ों मजदूरों को निगल जाती है। बोर होल से पहले से पानी रीझ रहा था, छः महीने पहले इस पानी की दिशा को सिर्फ मोड़ कर मैनेजमेंट ने कोयला निकाला। आज भी जब बोर होल से पानी रीझ रहा है तो इसे सिर्फ ठासनी से बंद करने का प्रयास किया गया। बड़े-बड़े इंजीनियरों के सुझाव को दरकिनार कर दिया गया। गुल्ली को साबल की मदद से बोर होल में ठोकने के बाद मैगजिन से ब्लास्ट करते ही- -"भयंकर गड़गड़ाहट, गिरते हुए आर्च, पत्थर। इतनी भयंकर ब्लास्टिंग का अहसास उन्हें कभी नहीं हुआ। पूरी खदान काँप रही है जैसे। किसी दैवी विपत्ति की आशंका में वे बार-बार केज को ले आने की चेतावनी देते हैं। केज आ रहा है – गड़-गड़-गड़-गड़!"[26] इतनी तेजी से पानी का वेग उठा कि किसी को भागने का कोई मौका ही नहीं मिला। ऊधम सिंह सहित तेरह लोग एक एयर पॉकेट में फँस गए जहाँ पर ऊधम ने एक डायरी लिखी, जिससे पता चलता है कि किस प्रकार उन्नीस दिनों तक रेस्क्यू के अभाव में एक-एक व्यक्ति तिल-तिलकर मरता रहा। इतने भयावह मौत का मंजर कि पाठक उद्वेलित हुए बिना नहीं रह सकता, अंदर फँसे एक-एक व्यक्ति की जिजीविषा, जीने की चाह। पर काल पर कोई विजय नहीं पाता है। दुर्घटना की जाँच के लिए जाँच कमिटी गठित की जाती है। यह जाँच कमिटी भी जाँच और मुआवजा के नाम पर लिपा-पोती करती है। आशीष को रेस्क्यू टीम के साथ नीचे उतरते वक्त ऊधम की डायरी मिलती है जिससे यह सिद्ध होता है कि मैनेजमेंट हत्यारा है। परंतु आशीष से छल से वह सबूत छीन लिया जाता है। सर्वेयर की पेशी से पहले हत्या हो जाती है। मैनेजमेंट और जाँच दल की मिली भगत से यह साबित कर दिया जाता है कि दुर्घटना मजदूरों की गलती के कारण हुई। परंतु संजीव संकेत देते हैं कि मैनेजमेंट का यह दावा कि दुर्घटना से कंपनी का करोड़ों का नुकसान हुआ यह उल्टी है क्योंकि दुर्घटना से घाटे में जा रहीं खदान को कंपनसेशन के रूप

---

26. संजीव, 'सावधान! नीचे आग है', पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 150

में करोड़ों का लाभ हुआ। मुआवजा के नाम पर अधिकारियों और ठेकेदारों की चाँदी रहीं। जान-बूझकर रेस्क्यू में देरी की गई ताकि कोई जीवित बचकर न निकले और कंपनी की सच्चाई देश को न बता सके। इस प्रकार देश की अन्य दुर्घटनाओं की तरह इस दुर्घटना में भी सिर्फ गरीब मजदूर ही मरा।

धार

'धार' संजीव के उपन्यास क्रम का चौथा उपन्यास है जो राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली द्वारा 1990 में प्रकाशित हुआ। यह एक नायिका प्रधान आंचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका 'मैना' एक आदिवासी महिला है जो परंपरागत शोषण, भ्रष्टाचार, उत्पीड़न और अत्याचार के विरुद्ध आवाज बुलंद करती है और सीधे माफिया ठेकेदार और पूंजीपतियों के निशाने पर रहती है। उपन्यास के केंद्र में मैना है जिसके इर्द-गिर्द पूरा संथाल परगना का जीवन-संघर्ष और चेतना विकसित होती है। पूरा उपन्यास बिहार के संथाल परगना के बाँसगड़ा क्षेत्र के अवैध कोयला खदानों में काम करने वाले आदिवासी श्रमिकों की जीवन-व्यथा है जो माफिया, बिचौलियों, पूंजीपति के शोषण का शिकार है। मैना सौंताल पिता और गुलगुलिया माँ की बेटी है। उपन्यास की शुरुआत मैना के जेल से रिहा होने से होता है। जहाँ जेल में जेलर उसके साथ बलात्कार करता है। यह उसके आंतरिक साहस का ही परिचायक है कि जेल से रिहा के वक्त इस बलात्कार से जन्में बच्चे को वह जेल में ही छोड़ देती है। परंतु पुलिस एक और कैदी मंगर के ऊपर अपना दोष मढ़ के बच्चा उसके हवाले करके उसे रिहा कर देती है। इस प्रकार उपन्यास के प्रारंभ में ही भारतीय जेलों की स्थिति और उसमें कैद महिला कैदियों के साथ यौन शोषण का चित्र उभर कर आता है। यह सर्वविदित है कि आज जेल के अंदर से ही कैदी अपने बाहर के सभी गैरकानूनी धंधे, चोरी, डकैती, लूट, हत्या को अंजाम दे रहे हैं। जेल में ही उन्हें चंद भ्रष्टाचारी सिपाहियों, अधिकारियों के मिली भगत के कारण मोबाइल फोन, मनोरंजन के संसाधन सहित अच्छे भोजन का भी प्रबंध हो जाता है। 'खैर' मैना का यह आंतरिक साहस माँ के ममत्व के आगे पराजित होता है और वह बच्चे तथा मंगर सहित अपने गाँव वापस लौटती है। उसे यह जेल यात्रा अपने इलाके में बसे तेजाब फैक्ट्री का विरोध करने के परिणामस्वरूप मिली थी। इस तेजाब फैक्ट्री के कारण वहाँ के परिवेश की

हवा और पानी सब विषैले हो गए थे। जिससे वहाँ के लोग विभिन्न बीमारियों के शिकार हो गए थे। मैना शोषक के इस चाल को बखूबी समझती है कि वह कभी सीधे वार नहीं करता है --"मालिक कभी सीधे लड़ता...? उसका तरफ से हमरा बाप, हमरा मरद और उसी जैसा भाड़े का आदमी था।"[27] और इसी कारण वह अपने पिता और पति को दलाल कह कर त्याग देती है –"काहें, मरद औरत को छोड़ सकता और औरत मरद की नई छोड़ सकता?"[28] इस प्रकार उपन्यास के पूर्वार्द्ध में जहाँ शोषक के खिलाफ आदिवासियों का संघर्ष है तो वहीं उत्तरार्द्ध में जनखदान के माध्यम से उनमें एक नये अधिकारबोध और चेतना का संचार होता है। संजीव ने उपन्यास में परंपरागत सौंदर्यबोध के स्थान पर यथार्थवादी कुरूपता को स्वीकार करने के लिय हमें बाध्य किया है।

अब मंगर मैना के साथ उसी सुब्बाराव के डब्बे में रहने लगा। जिस सुब्बाराव का एन्काउंटर रेलवे पुलिस ने अपने परमोशन के लिये कर दिया था। सारे देश में अपराधी और सरकारी अधिकारियों में मिलीभगत का चित्र एक जैसा है। पुलिस जब तक चाहती है उनसे वागन तोड़वाती है, सरकारी संपत्ति का लूट करवाकर उसमें से कमीशन हड़पती है और जब उसका स्वार्थ सिद्ध हो जाता है तो उनका एन्काउंटर करके परमोशन का दोहरा लाभ उठाती है। संजीव ने दिखाया है कि छोटे-मोटे बच्चे जिमी गति से आते हुए मालगाड़ी से चीनी बटोरते हैं और अपने मालिक पंडित सीताराम को सौंप देते हैं। मैना एक संघर्षशील, स्वाभिमानी, साहसी एवं विद्रोही नारी है। तभी तो कोई उसे हाथ लगाने का साहस नहीं करता और जो रात के अंधेरे में ऐसा करने का दुस्साहस करता, मैना उस पर तेजाब फेंकने से भी नहीं डरती। उपन्यास का नायक शर्मा मोर्चा के कुछ लोगों के साथ जब मैना से मिलते हैं तो दिकुओं और आदिवासियों के संपर्क पर चर्चा करते हैं। शर्मा आजीवन आदिवासियों के हितों के लिए लड़ते हैं। वे कहते हैं –"मैं गाँव-गाँव यही सारी बातें सभी से कहता हूँ कि तुम भोले हो, अपने आदिम

---

27. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 14

28. वही, पृष्ठ संख्या – 13

संस्कारों से जकड़े हुए हो। सभ्यता के फैलाव से डरकर कोने में सिकुड़ते जाने से क्या होगा? तुम्हें समय के बदलाव को समझते हुए, कुछ जड़-संस्कार छोड़ने होंगे और अपना छीना हुआ हक वापस लेना होगा।"[29] शर्मा मंगर को लेकर पूरा बाँसगड़ा इलाके का भ्रमण कराते हुए वहाँ की स्थिति से मंगर को अवगत कराते हैं कि जब तेजाब की फैक्ट्री से होती हुई हवा गाँव की ओर बहती है तो पूरा बाँसगड़ा खाँसता है। पूरा गाँव प्रायः उजाड़ हो चुका है। रोजगार का कोई साधन नहीं है। खेती के वक्त थोड़ी बहुत मजदूरी मिल जाती है। फिर "यह धान भी दो-तीन महीने से ज्यादा नहीं खींच पाता; चोरी से कोयला काटने-बेचने का काम भी पर्याप्त नहीं है, फिर दूर-दूर के ठेकेदार आते हैं, इन्हें सस्ती मजदूरी पर काम के लिए ढोर-डाँगरों की तरह हाँक ले जाते हैं। सोचिए, कितने आश्चर्य की बात है कि धान के खेत, इतनी कोलियारियाँ और छोटे-से लेकर चित्तरंजन और केबुल्स के बड़े कारखाने होते हुए भी इनकी जिंदगी में कोई सुरक्षा नहीं।"[30] संजीव यहाँ शर्मा के माध्यम से यह बात रेखंकित करना नहीं भूलते हैं कि स्वच्छता के मामले में आदिवासी संस्कृति आर्य संस्कृति से बेहतर है क्योंकि किसी भी आदिवासी का घर गंदा नहीं मिलेगा जबकि कई ब्राह्मणों के घर के अंदर गंदगी का अंबार मिलेगा। ज्ञान के अभाव के कारण आदिवासियों में जादू-टोना, भूत-प्रेत, बलि प्रथा, तंत्र-मंत्र और ओझा का भय व्याप्त है। तभी तो तेजाब फैक्ट्री का विरोध करने के कारण महेंद्र बाबू के इशारे पर जॉन गुरु मैना की माँ को डायन घोषित कर देता है और दो सौ रुपया तथा दो ठो बकरा का मांग करता है। जिसके कारण वह गाँव छोड़कर भागने को विवश हो जाती है। इनके गरीबी का लाभ उठाकर ईसाई चर्च गुरु इनका धर्म परिवर्तन करवाकर इन्हें ईसाई बना लेते हैं। परिणामस्वरूप वे अपने धार्मिक संस्कार और लोक-संस्कृति से भी दूर होते जा रहे हैं। आदिवासियों की परंपरा के अनुसार भ्रष्ट होते ही आदमी का श्राद्ध कर दिया जाता है और मैना भी मंगर से विवाह कर भ्रष्ट हुई थी। इसलिए जहाँ एक ओर उसके पिता टेंगर और पूर्व

---

29. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 34

30. वही, पृष्ठ संख्या – 36

पति फोकल ने उसका श्राद्ध कर दिया वहीं दूसरी ओर मैना ने 'लॉबीर' की बैठक बुलाकर अपने और मंगर के रिश्ते को बैधता प्रदान की। भोज-भात संपन्न होने के बाद मैना ने अविनाश शर्मा के कहने पर सौतालों की उस सभा को संबोधित कर उनको उनकी वास्तविक स्थिति से वाकिफ कराया। उसने कहा रेलवे पुलिस हमसे सिलतोड़ी कराती, हमारी बहन-बेटी के इज्जत से खेलती, हमारी चोरी हजम करके हमें कुड़ा बिनने को विवश करती, तेजाब फैक्ट्री में काम के नाम पर हमें कुत्ता बनाकर रखती। हमारे खेती को नष्ट कर हमारे खेत, पेड़, कुआँ, तालाब में तेजाब घोल दिया। हमें चोर, दलाल और भिखारी बना दिया। हमें पिने का स्वच्छ जल भी नसीब नहीं जबकि पानी का पाइप यहीं से गुजरता। वह आदिवासियों को ललकारती है – "कोइला का खजाना पे हम रएता है, फिर भी कंगाल? कब तक अइसा माफिक चलेगा?"[31] और इस सभा में यह तय हुआ कि आज से कोई आदमी तेजाब के कारखाने में काम करने नहीं जाएगा। और इस प्रकार अपने उदत्त जीवटता और तटस्था के बल पर उसने उस इलाके के तेजाब फैक्ट्री को बंद करा दिया। और इलाके से गुजरने वाले पाइप लाइन का ज्वाईंट तोड़कर सभी सौताल भाइयों के लिए पानी उपलब्ध करवाया। पर अब उनके आगे रोजगार का संकट था, परंतु मैना एक अनोखी व्यक्तित्व की मालकिन है। उसके शरीर को जितना भी नोचा-खसोटा गया, पर कोई उसे तोड़ नहीं पाया। वह एक जन्म में कई बार मरती है। परंतु अपनी जिजीविषा के कारण उतनी ही बार फिर से जन्मती है। अपने समाज के प्रति उसकी अपनी ही नैतिकता है तभी तो अपने पिता के समाधि के नीचे उसे जब कोयला प्राप्त होता है तो उस पर वह स्वयं अधिकार नहीं करती अपितु पूरे बाँसगड़ा के आदिवासियों को वहाँ से कोयले निकालकर जीने-खाने का रास्ता देती है। वह अपने परिवार के सदस्यों के व्यवहार एवं उसके प्रति अपने कर्तव्य में सजग है। तभी तो जब अपने परिवार के साथ कोयला बेचने निकलती है और उसकी बेटी सितवा का कोयला सबसे पहले बिक जाता है। फिर वह सितवा के बोरे में कम कोयला भरना शुरू करती है, फिर भी उसका कोयला सबसे पहले बिक जाता

---

31. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 54

है तो वह सितवा को कोयला बेचने जाने से सीधे-सीधे मना कर देती है, क्योंकि वह अपने अनुभव से मनुष्य के चरित्र को भाँपती है और उसे यह अच्छी तरह आभास रहता है कि उसकी पुत्री के युवती होने के कारण ही उसका कोयला जल्दी बिक रहा है। वह अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती है। उन्हें पढ़ा-लिख कर अच्छा इंसान बनाना चाहती है।

जनमोर्चा के नेता अविनाश शर्मा और मैना के प्रयास से कोऑपरेटिव माइनिंग के रूप में एक जनखदान शुरू किया जाता है। आपस में यह तय किया जाता है कि जनखदान के परमिशन के लिए प्रधानमंत्री सहित देश के सभी मंत्रियों और अधिकारियों से प्रार्थना की जाएगी। आपस में मिलकर यह निर्णय लिया गया कि हम सभी मजदूर अपनी जीविका के मुताबिक कोयला लेंगे ओर बचे हुए कोयले को राष्ट्र को सौंप देंगे। उन्होंने पत्र में संबंधित अधिकारियों को लिखा कि क्षेत्र का दौरा कर जायें और जमा हुए कोयले के ढ़ेर को जब चाहे सरकार ले जाए। इस प्रकार उनके कड़े मेहनत और अथक प्रयास के बल पर जल्द ही जनखदान संपूर्ण रूप में प्रतिष्ठित हो गया। परंतु शर्मा द्वारा अनेक बार सरकार को पत्र लिखने के बाद भी न तो कोई अधिकारी खदान का दौरा करने आया और न ही जमा हुआ कोयले के ढ़ेर को ले जोन का प्रयास ही किया। परंतु खदान उसी तरह फल-फुल रहा था। जनखदान में काम करने वाले लोगों की संख्या हजार तक पहुँच गई। जनखदान के माध्यम से ही वहाँ अस्पताल, स्टोर, स्कूल और प्रयोगशाला खोले गए। इससे शोषक वर्ग बौखलाया भी, महेंद्र बाबू ने शर्मा को लड़ाई की धमकी दी तो शर्मा ने कहा –"हाँ एक तरह की लड़ाई ही समझिए? व्यक्तिगत स्वार्थ के खिलाफ सामुहिक स्वार्थ की लड़ाई है यह।"[32] खैर इस बीच कुछ सरकारी अधिकारी जनखदान के दौरे पर आये और सभी फाइलों और कागजों की जाँच करके सब कुछ सही पाकर कुछ उदास हुए। क्योंकि उन्हें तो गलती ढूँढ़नी थी, जिससे कुछ रिश्वत कमाया जा सके। वे विजिटर्स बुक में भी आदिवासियों के दबाव पर लिखते हैं परंतु इसमें भी खदान के दोषों को ही रेखांकित करते हैं। और अंततः जनखदान के स्थान पर महेंद्र बाबू के

---

32. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 146

खदान का राष्ट्रीयकरण होता है। इस प्रकार एक बार फिर शोषणकर्ता की विजय हो जाती है। ईमानदार मजदूर मुँह ताकते रह जाते हैं। फिर भी लेखक का मानना है कि यह पराजय, पराजय नहीं है, उनका श्रमफल उन्हें अवश्य मिलेगा। उनमें आशा की किरण दिखती है।

पाँव तले की दूब

संजीव के उपन्यास क्रम का पाँचवा उपन्यासिका है। यह लघु उपन्यास झारखंड निर्माण के पूर्व का झारखंड आंदोलन को आधार बनाकर लिखा गया है। पूरे उपन्यासिका में आदिवासियों की जीवन-शैली, जीवन-संघर्ष, उनके जीवन में व्याप्त शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, भ्रष्टाचार का वर्णन है। उपन्यासिका का नायक सुदीप्त है जो झारखंड-डोकरी स्थित 'नेशनल थर्मल पॉवर स्टेशन' में अधिकारी के रूप में कार्यरत है और लोगों में 'बिजली साहब' के रूप में प्रसिद्ध है। वह एक आदर्शवादी युवक है, अपने आदर्श से वह बचपन से लेकर सरकारी अधिकारी के सफर तक में कभी समझौता नहीं करता है। संपन्न परिवार में जन्म लेने के बावजूद संपन्नता का अहं कभी उस पर हावी नहीं होता बल्कि उल्टे अपने पिता द्वारा गरीब हरवाहों, मजदूरों पर किये जा रहे अत्याचार का विरोध करता है। अपने पिता द्वारा थप्पड़ उठाये जाने पर वह अपनी बाल विवाहिता पत्नी को मुक्त करता है और घर छोड़ देता है। थर्मल पॉवर स्टेशन में कार्यरत होने के पहले वह उसी इलाके के आदिवासी लोगों के हक की लड़ाई में शामिल रहता है। सरकारी अधिकारी रहते हुए भी उस पर आदिवासी हिमायती होने का आरोप लगता है। वह खड़गपुर से पास किया हुआ बैचुलर इंजीनियर है परंतु पढ़ाई के समय से ही उसका रूझान दलित उत्थान की तरफ रहता है जो आगे चलकर आदिवासी प्रेम में परिणित होता है। परंतु उसके चरित्र में जो एक सबसे बड़ा अभाव है – वह है दृढ़ निश्चयता का। जिसके कारण वह किसी एक भी कार्य को संपूर्ण नहीं कर पाता – वह न ही आदिवासियों का पूर्ण उत्थान कर पाता है, न ही अपनी नौकरी से न्याय कर पाता है, न ही राजनेता बन पाता है और न ही साहित्यकार बन पाता है। उसके व्यक्तित्व की यह कमजोरी रहती है कि वह कालीचरण किस्कु, गोपाल, फिलीप, हंस दा, मनीष किसी भी अपने चरित्र नायक को खड़ा नहीं कर पाता है और अपना अंतिम जीवन 'पंचपहाड़' के एक छोटे से गुफा में व्यतीत करता है जहाँ उसका मर्मांतक अंत होता है।

उपन्यासिका की शुरुआत सुदीप्त के मित्र समीर का 'पंचपहाड़' नामक हाल्ट पर सुदीप्त की तलाश में उतरने से होता है। वह पहाड़ पर स्थित गुफा नुमा सुदीप्त का कबाड़खाना ढूँढ़ने में सफल हो जाता है पर सुदीप्त वहाँ नहीं मिलता। वह उसके इंतजार में वहीं लेट जाता है, और सुदीप्त से अपनी पहली मुलाकात को स्मरण करने लगता है। जब वह एक पत्रकार के रूप में एक आदिवासी गीत के गीतकार को ढूँढ़ते हुए सुदीप्त से मिला था। आरंभ से ही सुदीप्त एक आंदोलनधर्मी व्यक्ति था। समीर से वह एक आदर्श पत्रकारिता का उम्मीद कर रहा था –"हमें कुछ ऐसे नौजवान पत्रकारों की ज़रूरत है जो सत्ता और सेठों की चाटुकार पत्रकारिता से अलग आंदोलन की सही तस्वीर पेश कर सकें।"[33] बाघमुंडी के जमीन के असली मालिक आदिवासी वहाँ भूखे-नंगे थे। महिलाओं के तन पर भी नाम मात्र के वस्त्र थे और बच्चों की हालत कंगाल। पूरा समाज शराब और उत्सव में डूबा हुआ था। शिक्षा का पूर्ण अभाव था। कुछ चालाक लोगों ने इन्हें शराब और कर्ज के दलदल में धकेल कर इनकी जमीनें हथिया ली। हंसदा ने यहाँ शिक्षा और शराबबंदी अनिवार्य कर दी थी और उनकी जमीनों पर कब्जा जमाये लोगों से उनकी जमीनें छोड़ देने को कहा था। पर दिकुओं ने जबरदस्ती बोये और आदिवासियों ने जबरदस्ती फसल काट ली –"मेड़ पर नगाड़ा बज रहा था और चारों ओर से तीर-धनुष, कुल्हाड़ी, हँसिया लिये काले-काले दरिद्र आदिवासी – महिला, पुरुष, बच्चे तक; दो-एक बंदूकें भी थीं। बहुत दूर पर खड़े कुछ अपेक्षाकृत संपन्न-से दिखने वाले लोग ताक रहे थे। तुमने बताया, वे आदिवासियों की जमीन पर जबरन कब्जा करने वाले महाजन लोग हैं। मगर वे पास न फटके और दोपहर तक सारा धान कट-बँटकर पहाड़ की दरारों में समा गया।"[34] यह पेट और हक की लड़ाई थी जिसने आदिवासियों को अस्त्र उठाने के लिए विवश कर दिया था। हंसदा की तरह एक और व्यक्ति वहाँ के सांसद मनीष थे जो अपनी इंजीनियरिंग की नौकरी छोड़कर आंदोलन में आये थे। वे जनता दरबार लगाकर जनता की फरियादें सुनते

---

33. संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या – 12

34. वही, पृष्ठ संख्या – 15

थे और उसका समाधान करने का प्रयास करते थे। तीसरे व्यक्ति हंसदा के तरह ही आदिवासी विजय थे। वे आदिवासियों के भूमि अधिग्रहण के विरुद्ध मुआवजा और नौकरी के लिए आंदोलन छेड़े हुए थे। हमारे देश में भूमि अधिग्रहण एक प्रमुख समस्या है। इसके लिए कोई निश्चित कानून नहीं है जिसके कारण मुआवजा और नौकरी के क्षेत्र में विषमता पायी जाती है। आदिवासियों की संस्कृति अरण्यमुखी है जिसके कारण ये विकास से दूर रह जाते हैं। उद्योगपतियों की भी अपनी मनमानी है। आज जहाँ पूरा विश्व ग्लोबल विलेज बना हुआ है, वह उद्योग लगाने के लिए अपनी सुविधा अनुसार जमीन का चयन करते हैं। मन पसंद जमीन न मिलने पर दूसरे राज्य में चले जाने की धमकी देते हैं, किसानों और आदिवासियों के हितों का अनदेखी करते हैं। देश या राज्य के विकास के लिए कृषि और उद्योग में समन्वय होना आवश्यक है और इन्हीं उद्योगों को अपने-अपने राज्यों में लाने और उद्योगपतियों को रिझाने के लिए प्राय: सभी जगहों पर सरकारें भूमि अधिग्रहण में जबरदस्ती करती है। जहाँ तक उचित मुआवजा और नौकरी का प्रश्न है वह भ्रष्टाचार के भेंट चढ़ जाता है। इसलिए हमारे देश में इस प्रकार का आंदोलन होता रहता है। आदिवासियों का शोषण सिर्फ जमीन तक सीमित नहीं है बल्कि संविधान में उनके उत्थान के लिए रोजगार के जो प्रावधान किये गए हैं उनका सवर्ण समाज द्वारा मखौल उड़ाया जाता है। उनके लिए आरक्षित पदों पर भी जनरल कोटा के लोगों को भर्ती कर लिया जाता है। तभी तो एन.टी.पी.सी. के अधिकारी सुदीप्त बाबू का चपरासी उनसे कहता है –"लेकिन इस बार सर, अगर आदिवासी कोटे को कैन्सेल कर जनरल कोटा बनाकर भाई-भतीजा लिया गया तो हम लोग नंय छोड़ेंगे सर !"[35] इन आदिवासियों के उत्थान की जिम्मेदारी जिन प्रशासनिक अधिकारियों पर है वे ही इनका शोषण कर रहे हैं अर्थात रक्षक ही भक्षक बने हुए हैं। अभी अक्टूबर 2018 में ही पश्चिम बंगाल के मेदिनीपुर जिले के आदिवासियों ने इसी मुद्दे पर कि उनकी आरक्षित सीटों को जबरदस्ती जनरल सीटों में न बदला जाए, हड़ताल और चक्का जाम किये थे। आरक्षित सीटों को जनरल सीट में कन्वर्ट

---

35. *संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या – 19*

कर जनरल कोटे के लोगों की भर्ती आज भी अनवरत जारी है। बल्कि आज उसमें एक नया अध्याय जुट गया है –नकली जाति प्रमाण पत्र का। प्रशासनिक अधिकारी को नकली कागज-पत्र और रिश्वत खिलाकर सामान्य वर्ग के लोग धड़ल्ले से एस.टी, एस.सी. प्रमाण पत्र प्राप्त कर रहे हैं और दलितों, आदिवासियों के पेटों पर लात मारते हुए उनकी नौकरियों को भी हजम कर ले रहे हैं। मेदिनीपुर के आदिवासी आंदोलन का एक प्रमुख मुद्दा जाली जाति-प्रमाण पत्र भी था। अपने भतीजे की बहाली नहीं होने पर पंडित, अधिकारी सुदीप्त से नाराजगी भरे शब्दों में कहता है –"बहुत देखा कानून साहेब! पंडित की गरदन स्प्रिंग-सी तन गई, सब बार पक गया देखते-देखते। 'कण्डीडेट नहीं मिला' कहकर कितनी बहालियाँ हुईं बताएँ...।"[36] परंतु सुदीप्त ने इस बावत पर्सनल विभाग को कड़ा नोट लिखा था कि –"आदिवासी या हरिजन के लिए आरक्षित कोटे में आदिवासी और हरिजन ही लिये जाएँ, उसे पहले की तरह जनरल कोटे में न बदला जाए।"[37] और इसी का नतीजा था कि पंडित को हटाकर कालीचरण किस्कु को चपरासी बनाकर उसके ही दफ्तर में भेज दिया गया।

आदिवासी समाज अशिक्षित, अंधविश्वासी और अपने इतिहास से अनभिज्ञ है। सिंधु, कानू, विरसामुंडा, सिंनगी दई के आंदोलनों को भुलकर शराब, अंधविश्वास और कर्मकांड में फँसा हुआ है। जो जंगल कभी उनकी जीविका के प्रमुख साधन हुआ करते थे आज उनपर ठेकेदारों का कब्जा है। सरकारी अधिकारियों और ठेकेदारों के मिलीभगत के कारण अवैध रूप से ट्रक के ट्रक जंगल काटकर बेच दिया जा रहा है जबकि जंगलों के मूल निवासियों को आज जंगल से एक दतुअन तक तोड़ने का अधिकार नहीं है। आक्रोश में आकर जब ये कुछ नहीं कर पाते तो तंत्र-मंत्र के जाल में फँस जाते हैं, तभी तो मात्र एक ओझा के कहने पर विधवा मंगरी देवी को डायन घोषित कर गाँव वाले मार डालते हैं और लोगों में जागरुकता फैलाने गए बिजली साहब पर भी पत्थर से हमला करते हैं। वास्तव में वे समझते हैं कि गाँव

---

36. संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या – 23

37. वही, पृष्ठ संख्या – 30

में फैलने वाले रोगों के पीछे वह डायन है जबकि गाँव में लकवा जैसा रोग फैलने के पीछे कारखाने से निकलने वाला दूषित जल और धुआँ है। दूषित जल जो बिना किसी फिल्टरेशन के मनसा नाले में गिरता है और गाँव वाले उसी जल को पीने के लिए विवश हैं। वायु प्रदूषण का हाल यह है कि कारखानों से निकलने वाला धुआँ पत्तियों के ऊपर परत के रूप में जम गया है तो फेफड़ों में जाकर यह विषैला गैस क्या करता होगा? परंतु गाँव वालों को इसकी जानकारी नहीं है। वे रोग का प्रमुख कारण टोना-टोटका समझते हैं और अस्पताल जाने के बजाय तंत्र-मंत्र से इसका इलाज करवाना चाहते हैं। खैर सुदीप्त स्वच्छ जलपान के लिए चांपाकल का आश्वासन देता है, डॉक्टरों की टीम उनकी जाँच के लिए भेजता है, रोगियों को अस्पताल लाने का आग्रह करता है और मनसा नाले का पानी पीने को निषेध।

यह उपन्यासिका झारखंड आंदोलन को आधार बनाकर लिखा गया है। जिस समय इस उपन्यासिका की रचना हो रही थी उसी समय बिहार को तोड़कर एक अलग झारखंड राज्य का मांग चल रहा था जो कि अब पूर्ण हो चुका है। सारे आदिवासी सरकारी घोषणाओं से परेशान थे, इन घोषणाओं से उनके आर्थिक स्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं आ रहा था इसलिए उन्होंने मजबूर होकर 'डायरेक्ट एक्शन' का निर्णय लिया। अर्थात झारखंड की खनिज संपदा कोयला, लोहा, जिंक, एल्युमीनियम आदि को झारखंड से बाहर नहीं जाने देंगे। हालांकि इस आंदोलन में जोश ज्यादा था होश कम। अवरोध, झड़प, गिरफ्तारियाँ और रिहाई का यह खेल एक सप्ताह तक चला और फिलीप का बलिदान लेकर यह 'डायरेक्ट एक्शन' का सप्ताह समाप्त हुआ। सुदामा इस आदिवासी आंदोलन से इस तरह प्रभावित थे कि वे सपने में भी गोपाल को संबोधित करते हैं –"डर गए न कि मैं तुम्हें आंदोलन में जाने से रोक दूँगा? अरे बुद्धु, मैं तो खुद ही चाहता था कि तुम जाओ, हाँ, मैं यह जरूर चाहता था कि जाने के पहले परिपक्व हो लो हर तरह से।"[38] लेखक को डर है कि झारखंड आंदोलन का हस्र भी स्वतंत्रता

---

38. संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या – 106

आंदोलन की तरह न हो जाए। अर्थात झारखंड मिलने पर उज्ज्वल राय और सुक्खु सिंह जैसे लोग सत्ता पर हावी हो जाए और आदिवासी जनता उसी तरह प्रताड़ित ही रह जाए। सुदीप्त द्वारा आदिवासी उत्थान के लिए किये गए इतने प्रयास के बावजूद आदिवासी समुदाय अपने सही हितैषी की पहचान नहीं कर पाती है और सुदीप्त को इस्तीफा देकर जाना पड़ता है। जब तक आदिवासियों को सुदीप्त की कार्य शैली पर विश्वास होता है वह काफी दूर जा चुका होता है। अर्थात उसकी जीवन लीला समाप्त हो चुकी होती है।

स्पष्टतः यह एक विचार प्रधान उपान्यासिका है जिसमें पात्रों और घटनाओं की संख्या अधिक है परंतु कथाकार स्वयं ही यह स्वीकार कर लेता है कि वह कोई भी चरित्र खड़ा करने में असफल रह गया है। परंतु आदिवासियों की स्थिति और संघर्ष पाठकों पर छाप छोड़ती है और उनके उत्थान के लिए पाठक को सोचने पर विवश कर देती है।

जंगल जहाँ शुरू होता है

यह उपन्यास समकालीन हिंदी उपन्यास के प्रमुख हस्ताक्षर संजीव के उपन्यास क्रम का छठा उपन्यास है। संजीव ने प्रस्तुत उपन्यास में नेपाल से सटे बिहार के समीपवर्ती पश्चिमी चंपारण में डाकू समस्या के मूल में वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों, आर्थिक विषमताएँ, अशिक्षा, बेरोजगारी, सामंती-व्यवस्था, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, अपराध, उत्पीड़न अवसरवादिता, अराजकता, भ्रष्टाचार इत्यादि की टोह ली है। बिहार के बेतिया जिले के इस क्षेत्र में जनतंत्र के स्थान पर जंगलतंत्र चलता है जहाँ डाकू जंगल सरकार के नाम से समानांतर सरकारें चलाते हैं। डाकू समस्या के मूल में यहाँ के घने, बीहड़, दुर्गम जंगल और जंगलों के बीच से बहती हुई नदियाँ भी हैं। जंगल जहाँ इन अपराधियों को शरण देती है तो नदी इन अपराधियों को जन्म। नदियों में प्रत्येक वर्ष बाढ़ आने के कारण कई थारुओं के मकान और खेत नदी के पेट में समा जाते हैं और बाढ़ थिराने पर नदी अपने दूसरे किनारे की ओर नयी जमीनें उगल देती है और फिर शुरू होता है इस नयी जमीन पर कब्जे के लिए नयी रंजिश, जो आरंभ है इस अपराधीकरण का। और इसी क्षेत्र में डाकू उन्मूलन के लिए *'ऑपरेशन ब्लैक पाइथन'* के अंतर्गत पुलिस उप-अधिक्षक के रूप में नियुक्ति होती है कुमार साहब की। वास्तव में यह

ऑपरेशन इस सीमान्त क्षेत्र के लोगों के लिए प्रधानमंत्री का *'ऑपरेशन फैथ'* है। ऑपरेशन इन्चार्ज उप पुलिस महानिरीक्षक सिन्हा साहब इस मिशन के सभी बहादुर पुलिस अफसरों को संबोधित करते हुए यह समझाते हैं कि यह पूरा क्षेत्र दुर्गम पहाड़ों, नदी-नालों, जंगलों एवं गन्ना के खेतों से अटा पड़ा है। दुश्मन को क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का चप्पा-चप्पा पता है। वो हर पल हमें देख रहा है और हम नहीं। इलाके के थारु जनजाति के लोग भी पुलिस का सारा हुलिया डाकुओं को बता देते हैं, परंतु डाकुओं के बारे में पुलिस द्वारा पूछने पर अनभिज्ञता जाहिर करते हैं। इसलिए इस थारु जनजाति के लोगों को विश्वास में लिये बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं। इस ऑपरेशन का प्रमुख उद्देश्य है –डाकुओं की गिरफ्तारी या सफाया, अवैध हथियारों को पकड़ना तथा जनता का विश्वास जीतना। हमें यह ध्यान रखना है कि किसी घर की तलाशी के दौरान भी एक जिम्मेदार पुलिस अफसर की तरह पेश आते हुए किसी निर्दोष नागरीक को परेशान नहीं करना है। वे सचेत करते हैं –"याद रखिये, पहाड़, जंगल, गन्ने के खेत, दोआबा, फूस के झोपड़े, खपड़ैल – कहीं से भी सन्न से गोली छूट सकती है। रहे आपके वीपन्स (हथियार) तो ये उसे भी लूट सकते हैं।"[39] कुमार को पता चलता है कि यहाँ के स्थानीय थाने में इन अपराधियों के खिलाफ न ही कोई फाइल है और न ही इनका कोई फोटो। ऐसी स्थिति में इन डाकुओं को पहचानना, पकड़ना या खात्मा करना सचमुच एक बड़ी चुनौती है।

कुमार एक बहुत ही ईमानदार, विवेकशील, कर्तव्यपरायण, निष्ठावान और आशावादी युवक है। एक मामुली स्कूल मास्टर का बेटा होते हुए भी बिना किसी पैरवी के अपने उपरोक्त गुणों के आधार पर ही वह डी.एस.पी. के पद तक पहुँचा है। परंतु पैरवी का अभाव प्रत्येक बार उसे प्रमोशन से वंचित कर देता है। खैर इसका परवाह किये बिना ड्यूटी ज्वाइन करते ही वह डाकू के तलाश में चौकीदार पारबती के कहने पर उसे साथ लेकर थरुहट के सबसे बड़ा मेला सहोदरा देवी के दरबार में पहुँचता है। सादा कपड़ा में पूरा पुलिस बल मेले में फैल जाते

---

39. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 8

हैं। पारबती ने कुमार को बताया कि पूजा करती हुई सुंदर-सी युवती बिसराम का जनाना है और उधर से आती हुई उसकी ननद मलारी। पूजा करने के बाद दोनों ननद-भौजाई एक-दूसरे को भेंटती हैं, एक दूसरे के बच्चों को पुचकारती हैं, खाने के बाद जब दोनों जमीन पर लेटती हैं, नाना विषयों पर चर्चा करती हैं, तो भौजाई को ननदोई पर गुस्सा आता है जो इतनी सुंदर ननद को छोड़कर पिछले दो वर्षों से गायब है। परंतु मलारी पर इसका कोई प्रभाव नहीं दिखता। भौजाई को ननद का पहनावा देखकर थोड़ी ईर्ष्या भी होती है और उसे यह भी संदेह है कि मलारी का पुत्र ननदोई का है कि सेठ का? लेखक यहाँ पर रेखांकित करते हैं कि पुरुष को घर में न पाकर जमींदार लल्लन बाबू मलारी की जो थोड़ी-सी जमीन है उसे भी हथियाना चाहते हैं। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में यह विदित है कि बड़े-बड़े जमींदारों के सामने गरीब गुरबा की अपनी कोई हैसियत नहीं है। उनके नाम मात्र के जमीन पर भी जमींदारों की टेढ़ी नजर है। वह कभी भी उनसे छीना जा सकता है। उनकी स्त्रियों के साथ जमींदार जब चाहे मनमानी कर सकता है। इतना उत्पीड़न, शोषण सहने के बावजूद भी थरूहट के लोगों के अंदर जीवटता है, सुख-शांति से जीने की चाह है तभी तो सहोदरा माई के दरबार में बीस एक थारु बालाओं के साथ ननद-भौजाई भी लोक नृत्य संगीत, 'झमटा' पर झूम उठती हैं –

"के जइहें हाजीपुर, के जइहें पटना,
से के जइहें...
अरे के जइहें अरे बेतिया नौकरिया,
के जइहें...?"[40]

कुमार के थाने लौट जाने के बाद पारबती मेले में डाकू परशुराम को देखता है।

आदिवासी प्रदेश की भाषा समझना भी कुमार के लिए एक चुनौती है – *'डाका पड़ल बा हो बिसहर'* की अस्पष्ट ध्वनि सुनकर कुमार बरसात की एक रात में पूरे दलबल के साथ डाकू का पीछा करता है। परंतु उन्हें घेर लेने के बाद पता चलता है कि वे साधारण लोग हैं और

---

40. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 17

उनकी कन्या को साँप ने काट लिया है और वे उच्चारण कर रहे थे 'विषहरिया हो, डाक पड़ल बा हो' अर्थात यदि कोई साँप का विष झाड़ने वाला हो तो मदद करे। गाँव के लोग अंधविश्वास से ग्रसित हैं, साँप काटने पर बच्ची को अस्पताल न ले जाकर झाड़-फूँक में उलझ जाते हैं और बच्ची प्राण से हाथ धो बैठती है। पुत्री की मृत्यु पर पिता बिसराम का विलाप पूरे प्रदेश का हाल बयां कर देता है कि किस प्रकार यह क्षेत्र जमींदारों के शोषण, डकैतों के अत्याचार, पूजा-पाठ, भुत-प्रेत के भ्रमजाल में फँसा है –"हमार तो हर तरीका से मौवत लिखल बा, ऐ बेटी! जिमींदार से, डाकू से, देवता-पिता से, भूत-भवानी से, पुलिस लेखपाल से... अरे, कबन सुख देखलू ऐ बेटी – ईं ईं ईं...।"[41]

डाकू परशुराम को भोजन बनाकर भेजने के जुर्म में पुलिस बिसराम बहू को पकड़कर ले जाती है और उसकी पीटाई करती है। लेखक ने बिसराम बहू को आधार बनाकर थारु जाति की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए बताया है कि गरीबी की हालत ये है कि घर में अन्न का एक दाना नहीं। बच्ची के श्राद्ध के लिए अपनी एकमात्र हँसुली बेच देती है। यह पूरा समुदाय डाकू और जमींदारों के दोहरे शोषण से पीड़ित है। पूरा समाज डाकू की मदद करने के लिए बाध्य है। खाना बनाकर न पहुँचाने के जुर्म में डाकू परशुराम का शिष्य डाकू बंशी तेरह ग्रामीणों की हत्या कर देता है। कार्यवाई के नाम पर स्थानीय थाने के दारोगा का ट्रांसफर होता है, उसे भी परशुराम के इशारे पर स्थगित कर दिया जाता है। ऐसे में इनकी मदद के सिवा ग्रामीणों के पास कौन-सा रास्ता बचता है? इधर पुलिस का खतरा भी बरकरार है। मालिक के खेत में भैंस पड़ जाने के जुर्म में मालिक भैंस को अपने खूँटे से बांध लेता है। खेत को पहले ही जमींदारों ने हड़प रखा है। मुकदमा चल रहा है, जिसको खाने को लाले पड़े हों वह मुकदमा क्या लड़ेगा? सादगी ऐसी की गाय का दूध नहीं दूहते सिर्फ उसके बछड़े के लिए छोड़ देते हैं। अंधविश्वास और झाड़-फूँक में फँसा समाज, परिस्थितियाँ ऐसी की वे आपको डाकू बनने के लिए मजबूर कर देंगी। परशुराम भी जमींदार की हरवाही करते-करते जमींदारों के लिए

---

41. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 21

आदमी, औरत, गोरु, बछरू, सामान उठाते-उठाते डाकू बना। बिसराम बहू को उसकी सुंदरता के कारण उसके गौने के तुरंत बाद ही खेत से उठा ले गया था और रात को वहीं खेत में छोड़ भी गया था। सरकारी घोषणा से कि जमींदारों से जमीने छीनकर गरीबों को पट्टा दिया जाएगा इन गरीबों को बहुत उम्मीदें हैं। वे 'गोरमिन्टी कानून' और 'कुमार साहेब' में आशा की किरण देखते हैं।

संजीव इस ऑपरेशन के अंतर्गत पुलिस के अंदर आपसी तालमेल की कमी, परस्पर ईर्ष्याभाव तथा डाकुओं और राजनेताओं की आपसी मिली-भगत को भी रेखांकित करते हैं। *'ऑपरेशन ब्लैक पाइथन'* आई.जी. और डी.आई.जी. के अहम् का भेंट चढ़ जाता है। ऑपरेशन स्थगित कर दिया जाता है। अपराधियों को फिर से सह मिलती है। अपराध को सत्ता का संरक्षण प्राप्त है ही। नेता इन अपराधियों का इस्तेमाल, बूथ दखल, लोगों को डराने-धमकाने, अपने विरोधी दल के नेताओं, कार्यकर्ताओं की हत्या कराने इत्यादि में करते हैं। परंतु परिस्थितियों के अनुसार उनसे पल्ला भी झाड़ लेते हैं, तभी तो मंत्री दूबे की पत्नी उन्हें सुझाव देती है कि बिटिया के विवाह के बाद विवाह में बिन बुलाये सम्मिलित तीनों डाकू – गोकुल, बिंदा और परशुराम का आत्मसमर्पण करवाकर प्रधानमंत्री से शाबाशी लीजिए और अपने को द़ाग-साफ़ कीजिए। परंतु विवाह में आये मंत्री के सरपरस्त डाकुओं को कुमार भाँप लेता है और मौका देखकर उनमें से दो को मार गिराता है, तीसरा परशुराम भागने में सफल हो जाता है। मंत्री जी चोला बदलते हैं, खबर बनती है कि मंत्री जी के घर डकैती करने आये थे, पुलिस ने उन्हें मार गिराया। मीडिया के ऊपर भी लेखक की पैनी दृष्टि है –"और इ ससुर पत्तरकार। दो बोतल दारु, एक तीन सितारा होटल या छोकरी-बोकरी दिला दो, कुछ भी लिखा लो।"[42] तभी तो *'दूध का दूध और पानी का पानी'* का संपादक अपने दैनिक अखबार में डाकुओं से मिली भगत के कारण भुल खबर प्रकाशित करता है कि रिटायर्ड मास्टर भरत शर्मा का अपहरण डाकू परशुराम ने किया है, जबकि उनका अपहरण डाकू प्रेमा ने किया था। जाँच

---

42. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 35

दल का मार्ग भटकाता है और कुमार भरत शर्मा के अपहरण कर्ता परशुराम की तलाश में जा पहुँचता है – चंद्रदीप सिंह के गाँव मेसुपुर, जिनका परशुराम कभी लठैत था। इसके बाद वह बिसराम के घर पहुँचता है, जहाँ से परशुराम का खाना बन कर गया था। बारी-बारी से वह लल्लन बाबू और दुलार के घर पहुँचता है, डाकू परेमा के संधान में। क्योंकि दुलार की लड़की के विवाह का खर्च डाकू परेमा ने उठाया था।

काली एक बहुत ही शर्मिला एवं संवेदनशील थारु जनजाति का युवक है जिसके एक बीघे की खेतिहर जमीन भी थी। परंतु खेत मलिकार के यहाँ बंधक पड़े हुए हैं। चीनी मील में काम करता था तो वह मील भी बंद हो गई। भैंस को चंद्रदीप सिंह खेत चरने के जुर्म में हाँक ले गया, ठेकेदार के यहाँ काम का पैसा के लिए बेगारी करता है, भाभी पुलिसिया मार के बाद खटिया पर पड़ी है, भतीजी को साँप ने डँस लिया, रोजगार की तलाश में वह दर-दर भटकता है, ऐसी स्थिति में जहाँ उसे एक ओर डाकू परशुराम के गिरोह में शामिल होने का न्योता मिलता है तो दूसरी ओर जोगी द्वारा स्मगलिंग के व्यापार का। परंतु वह अपने आप को इस दलदल से बचाता है और ठेकेदार सुलेमान खाँ के यहाँ फिर से हलवाही का काम पकड़ता है। ठेकेदार से बीस रुपया प्राप्त कर भैया-भौजी को भेजता है। सुन्नर पांड़े के यहाँ फेंकन दुसाध की पत्नी के साथ सवर्ण समाज द्वारा किये जा रहे बलात्कार को अपनी नंगी आँखों से देखता है और जब्त करता है अपने आप को, जाति-व्यवस्था की सड़ांध से भरे पंचों के फैसले को –"पांड़े या उनके साले ऊँची जात के आदमी फेंकन बहू जैसी नीच जाति के साथ यह कर्म कर ही नहीं सकते।"[43] इन्साफ कहीं नहीं है, डाकू परशुराम भी फेंकन दुसाध को यह कहकर भगा देता है कि –"वह चमारों, दुसाधों, धोबियों, कुम्हारों, लोहारों और नोनियाओं का केस नहीं लेता।"[44]

ठेकेदार सुलेमान खाँ काली को मेहनताना देने के बजाय झड़प देता है जबकि डाकू

---

43. *संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 92*

44. *वही, पृष्ठ संख्या – 92*

परशुराम को डर से पन्द्रह हजार रुपये दे देता है। गेहूँ पिसवाने जाते समय काली की मुलाकात उसके चीनी मील के पुराने संगतिया नरैना से होती है, प्रथम मुलाकात, दो-चार मुलाकातों में बदलती है और मस्तिष्क में विकसित होता है अपराधीकरण का अंकुर। दोनों मिलकर सुलेमान खाँ के लड़के अल्ताफ का अपहरण फिरौती के लिए करते हैं। काली अभी भी अपने आप को इस कार्य के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं कर पाया है। वह बच्चे की रुलाई पर टूट जाता है। नरैना उसे याद दिलाता है –"क्या इस लोर के आगे भौया-भौजी, दुधमुँही भतीजी की आँख का लोर भूल गए?"[45] फिर भी वह भभक कर रोता है –"हमने लाख चाहा कि ऐसा न हो, जब-जब हम पर जुल्म हुआ, मन बेकाबू हुआ, हमने मन को जब्त ही किया – हे माता भवानी, हे देवता पितर, हे सोमेश्वर देब, हमको कुमारग से बचाना लेकिन आखिरकार आज... उसकी घिग्गी बँध गई थी, हमने नहीं चुनी थी यह जिंदगी। नहीं बने थे हम इन राहों के लिए। फिर भी देखो –कैसे धकेल दिये गए।"[46] कुशल अपहरण कर्ता न होने के कारण काली अपनी बहन मलारी की मदद से बच्चे को किसी दूसरी पार्टी के हाथों बेच देता है। और इस प्रकार एक नये अपराधी गिरोह का जन्म होता है। काली इसके बाद कई अपहरण, लूट और प्रतिशोध की घटनाओं को अंजाम देता है और *'अपना डाकू दल'* तैयार कर 'सरदार काली' में परिणित हो जाता है। डाकू बनने के बाद काली का भी चारित्रिक पतन होता है, वह भी स्त्रियों के अपहरण, संभोग और बलात्कार की खाई में कूद पड़ता है। स्त्रियाँ ऊँची जाति की होनी चाहिए, इस प्रकार वह सवर्ण समाज से प्रतिशोध लेता है। सुन्नर पांड़े की स्त्री पड़ाइन को नंगा कर फेंकन दुसाध के पत्नी के बलात्कार का बदला लेता है और पड़ाइन को पूरे गाँव में बदनाम कर देता है। डी.एस.पी. कुमार नये-नये डाकू दल के उदय का कारण उत्पीड़न और प्रतिशोध को मानते हैं, नोनिया, परशुराम, परेमा सबकी पीड़ा एक ही है। कुमार मानते हैं कि एक अपराधी गिरोह को समाप्त करने पर चार नये गिरोह पैदा हो जायेंगे, जरूरत है इसके जड़

---

45. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 96

46. वही, पृष्ठ संख्या – 96-97

से उन्मूलन की और इसके लिए जरूरी है सामाजिक आर्थिक व्यवस्था और भूमि सुधार को लागू करने की।

कुमार मुरली पांड़े को लेकर काली की तलाश में सोमेश्वर तक की यात्रा तय करते हैं परंतु खाली हाथ लौटते हैं। मास्टर मुरली पांड़े को इस क्षेत्र की पूरी जानकारी है। डाकू उन्मूलन के लिए उनका दृष्टिकोण अत्यंत स्वच्छ है। उनका व्यक्तित्व ही है कि डाकू से लेकर पुलिस तक उनका सम्मान करते हैं, इस जंगल में लेखक के लिए वे आशा की किरण हैं। वे गांधीवादी विचारधारा के सत्यवादी, सत्यमार्गी सिपाही हैं जो लाख विपत्तियों में भी डिगते नहीं, हिम्मत नहीं हारते, तभी तो कुमार कहते हैं –"इन मास्टर साहब को न भूख सताती है, न प्यास, न प्रकृति लुभाती है, न डाकू आतंकित करते हैं, चौबीसों घंटे चार्ज्ड रहते हैं।"[47] डाकू बंसी के उत्पीड़न तथा पुलिस की अकर्मण्यता के कारण गाँव को सामूहिक अपमान से बचाने के लिए *'ग्राम सुरक्षा दल'* बनाते हैं। जबकि डाकू काली भी उनका ही शिष्य है। वे यह प्रण करते हैं कि मरते दम तक लोगों को अत्याचार और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार करते रहेंगे। लेखक की दृष्टि में वे भविष्य के निर्माता एवं नायक हैं। तभी तो मृत मलारी के पुत्र के लिए कुमार साहब को मास्टर मुरली पांड़े से उचित कोई और आश्रय नहीं सूझता है। कुमार एक विवेकशील और आशावादी अफसर है। वह प्रेमचंद की तरह ही हृदय परिवर्तन को ही इस समस्या के उन्मूलन का मूल समझता है। तभी तो काली का मार्मिक पत्र पाकर उससे मिलने जंगल में पहुँच जाता है और उसे आश्वस्त करता है कि अगर वह आत्मसमर्पण करे तो उसके बड़े भाई बिसराम पुलिस के चंगुल से छूट सकते हैं। काली को विवेकानंद की पुस्तक **'दिमाग को कैसे नियंत्रित करें'** और राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक **'भागो नहीं दुनिया को बदलो'** देने का मूल उद्देश्य भी काली का हृदय परिवर्तन करवाना ही है। चार महीने बाद काली कुमार को जब फिर से पत्र लिखता है तो वह चाहता है कि वह लिख दे --"अगर भैया को बाइज्जत बरी कर दिया जाए, अगर भैया-भौजी की दवा करा उन्हें स्वस्थ

---

47. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 110

करा दिया जाए, अगर ठेकेदार और मलिकार उसकी हड़पी गई सारी चीजें लौटा दें और भैया-भौजी को फिर से सम्मानित जिंदगी जीने का हक मिल जाए तो वह समर्पण कर देगा।"[48] मगर तभी जंगल में एक घटना घट जाती है, एक बाघ एक पाड़े का शिकार करता है। काली को महसूस होता है कि इस जंगल में उसकी हैसियत उस पाड़े के समान है और पुलिस (कुमार साहब) बाघ के समान। बाघ और पाड़े का मुकाबला ही क्या? पाड़ा जानता है कि मृत्यु उसके सामने है, परंतु वह मृत्यु से लड़ता है, एकाध बार तो वह बाघ को भी दूर झटक देता है। पर बाघ उस मरे हुए पाड़े को घसीटकर जंगल से बाहर नहीं ले जा पाता है। काली समझता है कि उसकी परणिती पाड़े के समान ही है परंतु वह अंतिम तक लड़ेगा, जंगल को नहीं छोड़ेगा। इस पत्र को पढ़कर कुमार की आशा पर पानी फिर जाता है कि काली आत्म-समर्पण करेगा।

डाकू लोग आत्मशुद्धी के लिए *'लखराँव'* करते हैं। अर्थात भगवान शिव को पुष्प अर्पित करते हुए एक लाख बार ॐ नमः शिवाय का जाप करना। सरकार का सख्त आदेश है कि उनके धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप न किया जाए, लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि 'लखराँव' के बाद डाकू लोग समर्पण कर देंगे। किंतु मास्टर मुरली पांड़े की अलग राय है। वे कुमार से कहते हैं –"हाँ सर, लूट, हत्या और बलात्कार के दागों से जब चुनर मैली हो जाए तो धर्म की लांड्री में भेज दो। सारा मैल धुल जाएगा, जिसे शिव जी उठाकर पी जाएँगे। इसके बाद फिर पाप करने की सहूलियत – जितना चाहे करो।"[49] जब इस लखराँव के संबंध में पुलिस की रणनीति तय होती है तो कुमार स्पष्ट करता है –"डाकू समस्या कोई ऊपर का आवरण नहीं है कि आप उसे खरोंचकर फेंक दें इनकी जड़ों में भूमि सुधार का न होना, ढ़ीला प्रशासन, पॉलिटिकल सेल्टर, रोजगार की समस्या, धर्म, टिपिकल भौगोलिक स्थिति वगैरह हैं –ये सभी इंटररिलेटेड हैं, सारा कुछ दुरुस्त कर दीजिए, रोग खुद-ब-खुद खत्म हो जाएगा।"[50] वे

---

48. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 140

49. वही, पृष्ठ संख्या – 143

50. वही, पृष्ठ संख्या – 146

उदाहरण देकर बताते हैं कि बेतिया जिले के नब्बे प्रतिशत खेतीहर जमीन पर सिर्फ एक प्रतिशत लोगों का कब्जा है। सामंतवादी व्यवस्था, आर्थिक विषमता, बेगारी, बेरोजगारी, सामंतों द्वारा अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए दलित उत्पीड़न, ये सभी डाकू बनने के प्रमुख कारक हैं। श्याम देव जैसा हाई स्कूल और इंटर फर्स्ट डिवीजन से पास व्यक्ति रोजगार के लिए दर-दर भटकता है, चाचा के द्वारा खेत हड़प लिये जाने के बाद रोटी की तलाश में डाकू परेमा के शरण में पहुँचता है। गंडक नदी भी इन्हें इस दलदल में फाँसने में सहायक है। नदी बाढ़ के समय कई घरों और खेतों को लील जाती है। बाढ़ समाप्त होने पर नदी के दूसरे किनारे पर नयी जमीन उतराती है, अवर्ण जातियाँ इस जमीन की तरफ ताक भी नहीं पाती है, और सवर्ण जातियाँ इस पर बल्लम गाड़ कर अपना कब्जा जमा लेती हैं। इस प्रकार से अवर्ण जातियाँ अपनी बची-खुची जमीन खोकर कंगाल हो जाती है। और उसके बाद जमींदारों की लठैती-फिरौती, अपहरण और फिर डाकू। इन्हीं कारणों से आम जनता के प्रति वे थोड़ा नरम होते हैं, अमीरों से लूटकर गरीबों को दान करते हैं और आम जनता में अपने प्रति एक विश्वास पैदा करते हैं। इसलिए ग्राम वासी आपसी झगड़े-टंटे के समाधान के लिए पुलिस या अदालत के पास न जाकर इन्हीं डाकुओं के पास जाते हैं। लखराँव के संबंध में कुमार कहता है कि लखराँव उनको नये अपराध करने का क्लीन चीट देगा। उधर परेमा कुमार साहब से मिलने का षड्यंत्र रचता है लेकिन कुमार सावधान हैं। परेमा पुलिस मुठभेड़ हो जाता है। परेमा के एक साथी के पांव में गोली लग जाती है और उसी के इंट्रोगेशन के आधार पर कुमार नेपाल से परेमा के पत्नी को गिरफ्तार करता है। यह गिरफ्तारी भी डाकुओं के अपहरण के जैसी प्रक्रिया थी क्योंकि कुमार भी अब कल-बल-छल का स्वामी है, वह रामजतन नोनिया को बड़ा भाई संबोधित करके उसे भावनात्मक जाल में फँसाकर उससे हथियार और डाकू श्यामदेव का सुराग प्राप्त करता है और उसका एन्काउंटर करवा देता है। यह हमारी व्यवस्था ही है जहाँ श्यामदेव जैसा हाईस्कूल और इंटर फर्स्ट डीविजन से पास व्यक्ति डाकू बनने के लिए बाध्य है। मार खाकर श्यामदेव टूट जाता है। वह हथियार का सुराग पुलिस को देता है और पुलिस उसे एन्काउंटर में मार गिराती है। यह मृत्यु उत्सव है, श्यामदेव पर फायरिंग के लिए सिपाहियों में होड़ मच जाती है। इस जंगल में आकर कुमार भी अपना विवेक खोता है। सबसे पहले तो

ऑपरेशन में बार-बार असफलता के कारण तथा परमोशन के लालच में तांत्रिक की शरण में जाता है फिर तहकीकात के नाम पर मलारी से संभोग करता है, यद्यपि दोनों क्रिया के लिए उसके सहकर्मी पांड़े जी उत्प्रेरक बनते हैं। परंतु वह अपने आप को आत्मग्लानि से मुक्त कैसे कर पायेगा? मलारी का रूप सौंदर्य उसके सर चढ़कर बोलता है, अपने रानी महल के बेडरुम से लेकर पत्नी के साथ सहवास तक में उसे मलारी ही नजर आती है। मुख्यमंत्री के कोप से बचा लेने के लिए वह तांत्रिक के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है। बिसराम जैसे निरीह व्यक्ति पर थर्ड डिग्री टार्चर करता है। जेल में भी एन्काउंटर कर बिसराम की हत्या कर दी जाती है, कुमार खामोश रहता है। मलारी और लंगड़ जैसे लोग समाज की मुख्य धारा में नहीं आ पाते, बल्कि पुलिसिया डर से गाँव से पलायन कर जाते हैं। जिस *'ऑपरेशन फैथ'* को लेकर कुमार चले थे, जनता के विश्वास पर वे खरा नहीं उतरते हैं। घायल मलारी काली को सचेत करती है कि –"डाकू का विश्वास कर लेना, लेकिन किसी हाकिम का विश्वास मत करना।"[51]

संजीव यह बताने से नहीं हिचकिचाते हैं कि यहाँ के डाकुओं को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है अर्थात चुनाव के समय बुथ कैपचरिंग से लेकर छप्पा वोट, अपहरण और खौफ का सृजन कर ये लोगों को मतदान केंद्र से दूर रखते हैं। इन्हीं के बल पर नेता, मंत्री और सरकारें बनती हैं। इसीलिए तो लखराँव के समय समर्पण की बात आने पर डाकू रामजतन नोनिया कहता है –"अपना काम में लाज काहे का? अरे भइया दिल्ली से हियाँ तक जे भी कुरसी पर बइठा है, सभे तो डाकू है। सब बंद कर दें, हम भी कर दें।"[52] चुनाव में खड़ा होकर यही डाकू पुलिस को भी चुनौती देते हैं, अपने को समाज सुधारक घोषित कर लेते हैं। दसियों खून, पच्चीसों अपहरण और सैकड़ों बलात्कारों का आसामी डाकू परशुराम जी यादव चुनाव लड़ रहे हैं, और पूरे चंपारण को डाकू मुक्त बनाने का बीड़ा उठाया है इन्होंने। जो काम इतने बड़े-बड़े पुलिस अधिकारी नहीं कर पाये, उसे संपूर्ण करेंगे परशुराम जी यादव। तभी तो कुमार के

---

51. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 202

52. वही, पृष्ठ संख्या – 151

समर्पण वाले प्रश्न पर परशुराम पलटवार करता है – *'उ अपना नौकरी बचाये'*। राजनीति में कोई स्थायी शत्रु और स्थायी मित्र नहीं होता। जातिगत समीकरण भारतीय राजनीति का मेरुदंड है, इसलिए प्रत्येक पार्टी के उम्मीदवार अलग-अलग जातियों के वोट बटोरने का तिकड़म भिड़ाते हैं। मंत्री दूबे जी कुमार पर परमोशन का जाल फेंकते हैं और उससे मदद माँगते हैं कि ऐसा कुछ कीजिए कि एस.सी. एस.टी का वोट उन्हें मिले, और हाँ, चुनाव तक डाकू परेमा को ढील मिला रहे। कुछ इसी प्रकार का ऑफर पी. पी. पार्टी के अध्यक्ष की तरफ से भी आता है। प्रत्येक डाकू चुनाव में किसी न किसी पार्टी का समर्थन कर रहा है। और इस प्रकार भारत का गणतंत्र तैयार हो रहा है।

काली उनसे अलग है। वह चुनाव में किसी का भी समर्थन या विरोध नहीं करता है। हाँ, सुन्नर पांड़े जो उसके शरण में डाकू बनने आये थे उनको वापस लौटाता है और गाँव में जाकर ऐलान करता है कि आज से सुन्नर पांड़े हमारे बड़े भाई। सुन्नर पांड़े की पत्नी को भौजी कहकर उनसे क्षमा माँगता है। इस प्रकार वह एक नये डाकू के जन्म को रोक देता है। वह अपने दल के सभी साथियों को भी जीवन की मुख्य धारा में लौट जाने के लिए छोड़ देता है और खुद कोई आश्रय न होने के कारण अपने दो साथियों के साथ वन में भटकता रहता है। कुमार साहब को जाते समय उनकी दोनों पुस्तकें लौटा देता है, कुमार साहब वापस लौट जाते हैं। परंतु काली धीरे से पूछता है –"का साहब, करि अइलीं डकैतन का सफाया।"[53]

सूत्रधार

जिज्ञासु प्रवृत्ति के कथाकार संजीव के उपन्यास क्रम का सातवां उपन्यास है **सूत्रधार**। नाट्य सम्राट और भोजपुरी के शेक्सपियर भिखारी ठाकुर के जीवन को केंद्र में रखकर संजीव ने इस उपन्यास की रचना की है और साथ ही साथ लोक-संस्कृति एवं लोककला के साथ अपने अदम्य आस्था का भी परिचय दिया है। यह एक जीवनीपरक उपन्यास है। उपन्यास के नायक शोषित, उपेक्षित लोककवि भिखारी ठाकुर हैं जिनके जीवन का समग्र एवं पूर्ण रूप

---

53. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 284

प्रस्तुत उपन्यास में प्रकट हुआ है। उपन्यास में व्याप्त जातीय संकीर्णता के विरुद्ध लोक-कलाकार भिखारी ठाकुर में काफी छटपटाहट है। बचपन से ही वे स्वच्छंद विचारधारा के रहें तभी तो स्कूल की चार-दिवारी में घिरे अपमान, उपेक्षा के जीवन के बजाय दियारे में गोरु चरवाहे की दुनिया उन्हें जानी-पहचानी लगी। क्योंकि यहाँ उन्हें गुरुजी की मुफ्त की टहलुअई करने से मुक्ति मिली। चरवाहे पूरे सिवान के मालिक होते हैं। यहीं भिखारी के अंदर का कलाकार जन्म लेता है। एक ओर हाँड़ी में टाँगुन, पिसान, कोदों का जेवनार, चुरता-सीझता रहता, चने का होरहा भुजाता रहता और दूसरी ओर सबको बटोर कर खपटे की ताल पर शुरू होता लोक-संगीत गवनई –

"हम त नइहर के बानी रसीली
कि लोगवा पागल कहेला ना..."[54]

यहीं से शुरू हुआ लोक संगीत उन्हें भिखरिया से 'मलिक जी' तक का सफर तय कराता है। परंतु उनकी जन्मगत जाति 'नाई' उनके लिए हमेशा उत्पीड़न का कारण बनी रही। भारतीय सवर्ण समाज ने कभी भी उन्हें नचनियाँ, बजनियाँ या लौंडे के दर्जे से उपर नहीं समझा। लोक कवि जब भी कलम-कॉपी उठाकर किसी गीत की रचना के लिए बैठते, तभी कोई न कोई बाबूसाहब टहलुअई करवाने पहुँच जाते, कवि के रंग में भंग पड़ जाता, दिल मसोस के रह जाता परंतु सब छोड़ कर बाबू साहब का दाढ़ी-बाल बनाने के सिवा कोई उपाय भी नहीं था। डॉ. सत्यकाम के शब्दों में "जाति प्रथा से पीड़ित भारतीय समाज एक दलित को रचनाकार के रूप में आसानी से कैसे स्वीकार कर सकता था। उच्च जाति के लोगों के लिए भिखरिया नचनिया था, भांड़ था, लौंडा था। जिस समय भिखारी ठाकुर नाई से 'कलावंत' बनने का प्रयास कर रहे थे, उस समय सवर्णों ने पग-पग पर उन्हें अपमानित करने, उनके आत्मविश्वास को कुचलने में कोई कसर न छोड़ी और उन्हें बार-बार 'नाई' होने का एहसास कराया।"[55]

---

54. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 19

55. काशिद गिरिश (संपा.) 'कथाकार संजीव', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 324

लोक कलाकार का जन्म बिहार, छपरा के कुतुबपुर गाँव में एक गरीब दलित नाई परिवार में हुआ था, नाम पड़ा 'भिखारी'। तत्कालीन समाज में दलित घुरहु, मंगरू, खदेरू, भिखारी इसी प्रकार के नाम रखने के लिए बाध्य थे। अच्छे नाम रखने से सामंती समाज रूस्ट हो जाता था। बचपन बाबा के जुबानी राम, शिव, कृष्ण, दधीचि इत्यादि के किस्से-कहानियाँ सुनते, गाय चराते बीता। भगवान के पूजा, यज्ञ में भी नाई सेवा-टहल में लगे रहते थे। इन सारी बातों का भिखारी के बाल मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनका स्वभाव धार्मिक रहा। एकौना के यज्ञ में रामायणी बाबा का प्रवचन सुनकर उन्हें अपने अनपढ़ होने का अफसोस हुआ और उन्होंने दुबारा पढ़ने का निश्चय किया और गुरु चुना 'भगवान साहु' को। गुरु ने भी हामी भरी। गंगा किनारे बालू के रेत पर अक्षर को लिख-लिख कर माँ सरस्वती का आशीर्वाद प्राप्त किया। उनके मन में रामायणी बाबा की तरह प्रवचन कर्ता बनकर मान-सम्मान प्राप्त करने की इच्छा जागृत हुई। परंतु उन्हें इस बात का भी एहसास था कि रामायणी बाबा ज्ञानी और विद्वान होने के साथ-साथ 'ब्राह्मण' भी थे जबकि वे 'नाई'। यह जाति भी भगवान जी की बनाई हुई है। ख्याति प्राप्त करने के लिए विद्वान होने से भी ज्यादा जरूरी है ब्राह्मण होना, और जाति छुपाना महापाप है। उन्हें वह घटना याद है जब उनके गौर वर्ण, सुगठित शरीर को देखकर ब्राह्मण समझकर एक पुरोहित ने चौका पुरने का काम सौंप दिया था जबकि दूसरे ही पल एक काले भीमकाय बदन के ब्राह्मण ने उन्हें जोर से डाँटते हुए यज्ञशाला भ्रष्ट करने का आरोप लगाया था –"जावो बच्चा दूसरा काम देखो। एक बात सुन लो, जात मत छिपाना, पाप लगेगा।"[56] लेकिन यहाँ प्रवचन कर्ता बनने की जो इच्छा उनके बाल मन में जागृत हुई थी उससे वह पाप बोध के द्वंद्व की स्थिति में भी थे क्योंकि प्रवचन कर्ता यानी ब्राह्मण होना। फिर भी उन्होंने कैथी सीखी, कविताई सीखी। नाच में अश्लीलता और फुहड़पन के विरोधी थे। वे नाच को कला के स्तर तक ले जाना चाहते थे तभी तो जब वे रचना करने लगे तो उसमें भी पंड़िताई का छाप दिखने लगा, तभी बाबू लाल ने उन्हें चेताते हुए समझाया –"तुम गोस्वामी

---

56. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 22

तुलसीदास नहीं, भिखारी नाई हो... खून से लिखो, पसीने से लिखो, आँसू से लिखो, ऐसा लिखे जैसा पहले किसी ने न लिखा हो, जो पढ़ने-सुननेवाले का करेज तक खींच ले!"[57] बाबू लाल उन्हें लेखनी में जीवन की मौलिकता की तरफ खींचना चाहते थे जबकि भिखारी शुद्धता और मौलिकता को लेकर द्वंद्व की स्थिति में थे। हों भी क्यों नहीं? उनके मित्र थे 'रामनंदन सिंह रामायणी'। रामनंदन सिंह और राम दोनों क्षत्रिय, प्रभाव इसका इतना कि नाच में भी उनके मुख से प्रवचन ही निकलते थे। बाबू लाल उन्हें इस प्रकार की उपदेशात्मक रचना से बाहर निकालना चाहते थे और समझाना चाहते थे कि तुम कितना भी कर लो बड़ी जातियों की नजर में हमेशा रहोगे भिखारी नाई ही।

बचपन में भिखारी अपने वृद्ध बाबा के साथ ब्याह वाले घरों में बारात विदा हो जाने के बाद पुरुष विहीन हुए घरों की रखवाली के लिए जाते थे। वहाँ वे पहली बार किवाड़ के छिद्र से झाँककर औरतों के बीच होने वाले *'डोमकच'* और *'जलुआ'* का आनंद लेते हैं। यहीं पर *'गंगा नहावन'* और *'परान पियारी'* का पाट भी देखा जो आगे चलकर उनके नाटक में प्रयोग हुआ। इसी समय दूसरी पत्नी और बेटे के निधन के पश्चात मनतुरना देवी आयी और उन्होंने एक बेटी को जन्म दिया। रोजी-रोटी का दबाव दिन-पर-दिन बढ़ रहा था और एक दिन छूरी पजाने के बहाने छपरा और वहाँ से चल पड़े पूरब की ओर खड़गपुर, फुफा के पास हजाम के काम के लिए। यहाँ रोज-रोज रात को रामलीला होती थी। भिखारी इसके नियमित दर्शक थे। हनुमान चालीसा सहित बहुत-सी भक्तिपूर्ण स्तुतियाँ कंठस्थ हो गई थीं। यहीं पर प्रमानिक दा के सहयोग से उन्हें *'बांग्ला जात्रा'* देखने का अवसर मिला। जात्रा भी एक प्रकार का नाटक ही होता है, भाषा को न समझते हुए भी भिखारी ने हाव-भाव से नाट्य के पूरे संदर्भ को समझा। डेरे पर झम्मन से माँगी गई रामायण पढ़के मन पूरी तरह से रामायण में रमा दिये। वहाँ से कलकत्ता होते हुए गाँव लौटे। कलकत्ते में दूर के समधि बाबू लाल की छपरहिया नाच पार्टी देखी और गाँव में आकर झाँकी में सीता माँ का अभिनय किया तथा एक मठिया में एक साधु

---

57. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 70-71

बाबा का भजन सुना। सूरदास के भजन से मंत्रमुग्ध होकर वे सूरदास की प्रशंसा करने पहुँच गए परंतु सूरदास ने भी उन्हें दूसरों की तरह हाथ-पाँव दबाने की टहलुअई में लगा दिया। वे सूरदास से संगीत के सूर, ताल, लय, राग, उतार-चढ़ाव सबकुछ सीखना चाहते थे परंतु इन सबके आड़े थी उनकी जाति 'नाई'। वे अपने अंदर के उपेक्षित-अपमानित कलाकार को बाहर निकालना चाहते थे। संवेदनशील कवि का मन किसी लक्ष्य की तलाश में था जो अब तक अस्पष्ट था। इस दिशा में वे निरंतर संघर्ष कर रहे थे परंतु विडंबना तो यह है कि –"औरत जितनी भी गुणवती क्यों न हो, भोगी के लिए उसका सिर्फ एक गुण है –भोगने की चीज। नान्ह जातिवाला आदमी चाहे जितना भी ज्ञानी हो, बड़ जातिवालों के लिए उसका सिर्फ एक उपयोग है – सेवा लेना। सेवा लेना और उससे घिन्ना करना।"[58] परंतु उन्होंने हार नहीं मानी, कालांतर में उन्होंने इस नाई जाति को ही ढाल बनायी। अपने नाटकों में 'बेटी वियोग', 'पिया निसइलन' के माध्यम से वे जब सामाजिक समस्याओं को उजागर करने लगे तो उच्च वर्ग के लोग बौखला उठे और बीच नाटक में ही हंगामा करने लगते क्योंकि ये सारी सामाजिक कुरीतियाँ उच्च वर्ग के लोगों में ही अधिक थी। तभी भिखारी बड़ी विनम्रता से अपने को छोटा नाई, हजाम कहते हुए माफी मांग लेते क्योंकि वे जानते थे कि सीधे-सीधे इन बिगड़ैल बबुआनों से भिड़ना नामुमकिन है परंतु अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को कुरेदते रहें। भिखारी ठाकुर को हिंदू वर्ण-व्यवस्था में नाई जाति की स्थिति का भी बोध था और वे नान्ह जाति में जन्म लेने के दंश को भी झेल रहे थे। चारों ओर से दलित अत्याचार, शोषण और घृणा के शिकार थे। दलितों की जाति ही उनकी पहचान थी। यही कारण है कि गाँव में जब रामलीला के दिन पाट के बँटवारे की बात आती है तो राम का अभिनय के लिए चार नाम उठकर आते हैं – बबनवा, रामनवला, धनी और शिवहरखा, इनमें से एक कोइरी, एक कुर्मी, एक दुसाध और एक राजपूत। दलित लड़कों का नाम रामनंदन सिंह एक स्वर में ही खारिज कर देते हैं जबकि रामनंदन सिंह एक उदारवादी बबुआन हैं और अगर उनकी मानसिकता यह

---

58. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 47

है तो और बबुआनों की जातिगत मानसिकता क्या होगी? यहाँ कलाकार के नाच पर तो खूब मजा लेते हैं, शाबासी देते हैं परंतु बाद में उनसे घृणा करते हैं और उनसे टहलुअई करवाते हैं। भिखारी ठाकुर की पीड़ा ही यही है। क्या पूरा जीवन टहलुअई करते बीत जाएगा? इससे उत्तीर्ण कैसे हुआ जाए? और यही बात उनके कलाकार बनने में प्रेरणा-स्रोत का कार्य करती है।

अब वे अपना नाच दल बनाना चाहते हैं और इस नाच-दल को बनाने के लिए पहले वे अलग-अलग गिरोहों के नाच – गोंड़ नाच, धोबिया नाच, अहिर नाच, चमार, कुम्हार, नेटुआ के नाच भी देखते हैं। नटों के नाच से बाँसुरी का स्वर पसंद आये तो अहिरों के नाच से नगाड़ा की धुन, वहीं गोंड़ नाच के प्रभाव से प्रभावित हुए जबकि भांड की छिछोरी भड़ौती देखकर वे भरी महफिल में ही खींझ उठे। अर्थात वे एक ऐसा तमाशा बनाना चाहते थे जिसमें मनोरंजन तो भरपूर हो लेकिन मरजाद न टूटे –"हम दूसरे ढंग की नाच चाहते हैं जिसमें रस-रंग तो हो, लेकिन मरजाद न टूटे। ... ऐसा कैसे होगा कि नाचो भी और घुँघटा भी बना रहे?"[59] वहीं दूसरी ओर उनके नाच दल बनाने से उनके घर के लोग भी काफी नाराज थे क्योंकि समाज में नचनियाँ-बजनियाँ का कोई अच्छा दर्जा प्राप्त नहीं था। शादी-ब्याह में भी खाने की पंगत में सबसे पीछे, अछूतों के साथ बिठाकर नचनियाँ-बजनियाँ को खाना खिलाया जाता था। पिता दलसिंगर ठाकुर को अपनी सामाजिक *'मरजाद'* टूटने का भय था। वे भिखारी को 'बिगड़ैल' समझते थे और उन्हें इस बात की चिंता थी कि भिखारी के नचनियाँ बनने पर उनके पोते-पोतियों का विवाह संबंध भी भँवर में फँस जाएगा। यही कारण है कि वे अपने पोते शीलानाथ का विवाह जल्दबाजी में तय करते हैं।

अपना नाच दल गठित होता है। गाँव और समाज के लोग मजाक बनाते हैं। भिखारी ठाकुर अपने तमाशे के लिए खेला स्वयं लिखते हैं और उनके तमाशे का विषय होता है *'भोजपुरिया परिवेश और उसकी सामाजिक समस्यायें'*। तत्कालीन समाज में अनमेल विवाह

---

59. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 62

की समस्या एक दानव का रूप ले चुकी थी जो न जाने कितने बच्चियों को निगल चुकी थी। उसी समय अपनी छोटी पुत्री सोनिया को साड़ी में देखकर वे कल्पना लोक में खो जाते हैं और *'बेटी वियोग'* की भूमिका तैयार होती है। एक-एक करके उसके विवाह की सारी घटनायें उनके मानस पटल पर दस्तक देने लगती हैं। पाँव पूजने के समय जब वे दूल्हा के चुचके पाँव देखते हैं तो उनके होश उड़ जाते हैं और बबुनी बेहोश हो जाती है। समाज में गरीबी का आलम यह था कि खेत रेहन पड़े हुए थे, उन्हें छुड़ाने के लिए पैसा नहीं था तो पुत्री के विवाह के लिए दहेज कहाँ से आए? समाज ने इसका एक सरल समाधान ढूँढ़ा था कि पैसा लेकर पुत्री का विवाह वृद्ध वर से कर देते थे, और उल्टे पाये गए पैसे से अपना गिरवी खेत छुड़ाते थे। यह प्रथा उच्च जाति के लोगों में ज्यादा थी। इसलिए इसे नाच में शामिल करने से वे डर रहे थे। कुछ इस्ट मित्रों का यह भी सुझाव था कि यह नाच की चीज नहीं है बल्कि साहित्य है। और जब इतने बड़े साहित्य का निर्माण हो रहा था तो उस समय भी बीच-बीच में उठकर भिखारी ठाकुर को सवर्णों की आव-भगत और हजामत भी करनी पड़ती थी। परंतु यह पाट जब मंच पर उतरा और बेटी ने अंत में रोते हुए विदाई गीत गाया –

"रोपेया गिनाइ लिहल-अ पगहा धराइ दिहल-अ
चेरिया के छेरिया बनवल-अ हो बाबू जी...!
... ...
बीच डललस मोर बिचवान हो बाबू जी"[60]

तो बेटी के इस विलाप के साथ भोंकार मारकर दर्शक मंडली में बैठे स्त्री और पुरुष सभी रोये और अपने समाज में फैले इस कुप्रथा को समझा। तमाशा का प्रभाव इतना कि कई गाँव में बेटियों ने वृद्ध वर से विवाह करने से इन्कार कर दिया, तो कई गाँवों में गाँववालों ने ही वृद्ध वर को खदेड़ दिया। परंतु कहीं-कहीं से ऐसा सुनने में आया कि कुछ बेटियों ने वृद्ध वर के विवाह के डर से खुदखुशी भी कर ली। परंतु इस नाटक का दूसरा प्रभाव भी अभी

---

60. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 102

बाकी था –"**अगुआ के पुत मरे, बभना के पोथी जरे**" का बहाना लेकर सवर्ण समाज नाच के बीच में ही गाली-गलौज और मार-पीट पर उतारू हो गया। बहुत सारे जगहों पर बिगड़ैल बबुआनों के डर से बेटी वियोग का पाट बीच में ही रोक देना पड़ा। भरी सभा में भिखारी और उनके दल का हाथ जोड़ते बिता और एक जगह से तो रातों-रात पूरे दल के साथ पलायन करना पड़ा। पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और सामाजिक कुप्रथा पर आधारित अपने इस नाटक को अपने नाच दल के सदस्यों के विरोध के बावजूद अलग-अलग गाँवों में खेलते रहें।

अपने समधी बाबूलाल के सुझाव से वे कुतुबपुर से चन्ननपुर आते हैं। बबुआनों का गाँव न होने के कारण शांति से वे *'बेटी वियोग'* को यहीं पूरा करते हैं। यहीं पर नाच दल का अभ्यास होता है। बाबूलाल नये-नये लवंडों को लाकर नृत्य कला के गुर, पग-संचालन, संगीत आदि की शिक्षा देते हैं। नृत्य को शास्त्रीय संगीत से भी जोड़ना चाहते हैं ताकि नाच दल किसी अन्य नाच दल से कभी उन्नीस न पड़े। परंतु भिखारी ठाकुर यह महसूस करते हैं कि गाँव-जवार के नाच को शास्त्रीय संगीत से जोड़ने की आवश्यकता नहीं, बल्कि कपड़े धोने की हच्छू-हच्छू से, दूध दुहने की धार के धर्र-धर्र से, कैंची की किच-किच, जूता ठोकने की ठकठक से, हरवाहों-चरवाहों की टेर से छंद निकलता है और वे इसी छंद को अपने लोक संगीत के माध्यम से फैलाना चाहते हैं। यह घटना हमें महावीर प्रसाद द्विवेदी का स्मरण करा देती है जहाँ वे सभी कवियों को कान्हा-राधा प्रेम से अलग होकर प्रकृति, पेड़-पौधा, पशु-पक्षी, समाज, विधवा इत्यादि पर रचना लिखने के लिए प्रेरित करते हैं। भिखारी ठाकुर नाच में भाव-भंगिमा को बहुत महत्व देते हैं क्योंकि हर चीज कागज पर उकेरी नहीं जा सकती –"हर चीज 'लिखत' में न आवै, कलम के बीनल शबद के अँचरा अतना छोट ह-अ कि कुलि ना समाए। एकरे खातिर देह के भाखा से कोशिश कईल जाला –आँख मटका के, त्यौरी चढ़ा के, अंग-अंग से समझाए के पड़ेला –देह के भाखा, इहे नाच ह-अ, नाटक ह-अ। केतना भारी भूल होखत रहल बाबूलाल से, शास्तरी नाच लादत रहलन? बरजना होगा उन्हें।"[61] और यहीं अभ्यास के दौरान

---

61. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 115

'बिदेशिया' का ताना-बाना तैयार होता है जो उनकी प्रसिद्धि का मूल आधार है।

जाति-व्यवस्था के मकड़जाल में फँसा भारतीय समाज, पूर्व जन्मों एवं पाप-पुण्य का भ्रमजाल। तथाकथित अशिक्षित छोटी जातियों के अंदर सवर्ण समाज द्वारा फैलाया गया यह भ्रम की उनका शूद्र में जन्म उनके पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर ही है। कवि का मासूम और निश्छल मन यह सोचता है कि अगर यह सही है तो इस जन्म के कर्मों के आधार पर उनका अगला जन्म किसी राजपूत या ब्राह्मण परिवार में होगा क्या? और जो ब्राह्मण, राजपूत आज अत्याचार, अन्याय या शोषण कर रहे हैं उनका जन्म नाई, धोबी, मुसहर, दुसाध इत्यादि छोटी जातियों में? तब वे बाबु रामनंदन सिंह के अगले जनम के लिए चिंतित हो जाते हैं क्योंकि वे अपेक्षाकृत उदारवादी बबुआन हैं। स्वप्न भंग होने पर उन्हें सुधि आती है कि बाबू रामनंदन सिंह का सपना बाबू कुँवर सिंह पर नाटक पूरा करना भी उनका कर्तव्य है। दलित समाज सवर्ण समाज की चालाक प्रवृत्तियों से शंकाकुल है कि जिस प्रकार यहाँ बाबु बबुआन लोग कोर्ट, कचहरी, थाना, कार्यालय आदि में घूस देकर या अपना जातिगत रौब दिखलाकर न्याय को अपने पक्ष में मोड़ लेते हैं, दूसरे का खेत अपने नाम करवा लेते हैं। उसी प्रकार चित्रगुप्त के पास भी रिश्वत देकर या रौब दिखाकर कहीं अपने इस जन्म के पापों को पुण्य में परिवर्तित न करवा लें। खैर जब नाटक लिखने बैठते हैं तो मन कुँवर सिंह की बजाय किसी दूसरी ही समस्या की तरफ भागता है और इस पीड़ा से लड़ाई किसी कुँवर सिंह के लड़ाई से किसी भी कीमत पर कम कर नहीं है। नाटक की शुरुआत ही नाई वंश की समस्या से करते हैं –

'श्री गणेश का चरण कमल में नावत बानी सीर
कहे भिखारी नाऊ वंश पर बहुत परलबा भीर...।'

सउरी में जनमते बच्चे और उसकी माँ के नौ महीने का पातक धोता है नाई। नेग, लड़का होने पर चार आना और लड़की होने पर दो आना। जबकि बाबा जी लोग पतरा और जन्मकुंडली देखकर बैठे-बैठे बाइस रुपया ऐंठ लेते हैं। इसी प्रकार किसी की मृत्यु पर माथा छिलना, नह काटना, गंगा-स्नान करवाना, कुआँ के जल से स्नान करवाना, जजमान का पाप

अपने माथे लेना, गोबर से लिपकर हवन वेदी को शुद्ध करना, पिंडदान का सारा कर्मकांड करवाना, दूर-दूर तक सवर्णों को न्योता पहुँचाना, ये सब नाऊ के टहलुअई में पड़ते थे। वे सोचते हैं कि नाऊ जाति की लड़ाई क्या किसी कुँवर सिंह के लड़ाई से कम है, बल्कि उससे भी कठिन है। क्योंकि अपने अंग ढँकने के लिए वस्त्र के रूप में मुर्दे के कफन प्राप्त करने के लिए उसे डोम से संघर्ष करना पड़ता था, और बाबा जी लोग बैठे-बैठे सारा दान-दक्षिणा लूट रहे थे। इस प्रकार तैयार होता है नाटक **'नाई बहार'**।

भिखारी ठाकुर का नाच अपने उफान पर था, **'बिदेशिया'** उनका प्रमुख नाच था। इसमें प्रत्येक परदेशी जो अपनी पत्नी और बच्चों को गाँव में छोड़कर कलकत्ता कमाने गए थे उनका दर्द था तो दूसरी तरफ उनकी पत्नियों का विरह वर्णन। नाच दल जब अपने अगले पड़ाव पर कोइलरी और कलकत्ता पहुँचा तो 'बिदेसिया' ने धूम मचा दिया। वहाँ के प्रवासी मजदूरों को नाटक में अपना दर्द और पीड़ा दीखा और उन्होंने सहृदय इसे अपनाया। इसके अलावा बेटी वियोग, गबरघिचोर, पिया निसइलन, नाई बहार, आदि लोक-नाटकों के मार्फत वे गाँव-जवार की समस्या को घूम-घूमकर अलग-अलग जगहों पर मंचन के माध्यम से उठाते रहे। जीवन में बहुत ऊँच-नीच संघर्ष से भी गुजरना पड़ा, जहाँ एक ओर नाच-दल से पैसा कमाकर गाँव में खेत लिखवाया तो वहीं दूसरी ओर उनका नाच दल भी टूटा। लालू और सोमारू ने भिखारी ठाकुर के नाच दल को छोड़कर अपना नया नाच दल बनाया। प्रतियोगिता बढ़ने के साथ मेहनत बढ़ा फिर भी उन्होंने अपने नाच में कहीं से भी किसी प्रकार की कमी नहीं आने दी। नाम बढ़ा, रुतवा बढ़ा, पैसा बढ़ा, परंतु वह मान-सम्मान जिसके लिए एक कलाकार जीता है, वह उन्हें नहीं मिला। बाबू रामाध्यानसिंह के दरवाजे पर दूर्गा पूजा के अवसर पर जब भिखारी ठाकुर का नाच हुआ तो बाबू रामाध्यानसिंह ने उन्हें 'मलिक' जी कहकर संबोधित किया और उनके लिए भी एक समान भोजन का प्रबंध किया। रामाध्यान सिंह को धन्यवाद देते हुए मलिक जी कहते हैं –"आपने हम जैसों को जो इतनी इज्जत दी – पहले तो इसी के लिए, रामाध्यान सिंह ने उन्हें बोलने दिया –

"शादी-बियाह में अब तक हमलोगों को जो भोजन मिलता रहा, वह एक तरह से दूसरे

तरीके का होता था, आपका दरबार बहुत बड़ा है, दिल दरियाव है, पहली बार सबको एक जैसा भोजन।"[62]

हमारे देश की यही विडंबना है कि यहाँ कलाकार, खिलाड़ी भूखों मरते हैं। देश के लिए सोना जीतने वाले कई खिलाड़ी बाद में बेहद गरीबी की स्थिति में पाये गए। जबकि दूध की लालच में मिलखा सिंह दौड़ते थे कि दौड़ में जितने के बाद उन्हें दूध पीने को मिलेगा। यह हमारे ही देश में संभव है कि जहाँ नेता, मंत्री लूट के अघा रहे हैं वहीं कलाकार भूखों मर रहे हैं, जातिगत संकीर्णता का शिकार हो रहे हैं। परंतु कवि का व्यक्तित्व इतना तटस्थ है कि जातिगत संकीर्णता उन्हें उनके कर्त्तव्य बोध से डिगा नहीं सकता है। समसामयिक समस्या पर कबीर के समान प्रहार करने की प्रयास करते हैं परंतु दूसरे ही पल डर से 'म्याऊँ' बोलकर मामला सलटा भी देते हैं। कुल्हड़िया महाराज के कहार गंगा द्वारा जब उनको पता चलता है कि महाराज अपने नौकरों की जरा-सी भूल पर उन्हें कोड़ों से पीटते हैं, कमरे में बंद करवा देते हैं, दाना-पानी बंद कर देते हैं तो उनका कवि मन छटपटा उठता है और उस दिन के नाटक **'गबरघिचोर'** के अंत में दो पात्रों – गलिज और गड़बड़ को डाँटते हुए, पंच की भूमिका में नाटक से इतर नया संवाद जोड़ते हुए डाँट पड़ते हैं रायबहादुर भिखारी ठाकुर –"जियादा गड़बड़ी करे तो कुल्लड़िया महाराज के हियाँ नौकर रखवा दो, दू दिन दाना-पानी बंद रही तो अकिल दुरुस्त हो जाई।"[63]

नाच दलों में बढ़ती हुई अश्लीलता और फुहड़पन से वे काफी चिंतित थे, इसीलिए सीमित संसाधन होते हुए भी चंदनपुर में नाच दलों का बिटोर करवाते हैं और नाच को अश्लीलता से बाहर निकालने का गुण सिखाते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में भड़ौती और लबारी के अंतर को समझाते हैं और नाच को शिवजी का वरदान बताते हैं जहाँ अश्लीलता की जगह

---

62. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –198-199

63. वही, पृष्ठ संख्या – 208

अंग-अंग की भाव-भंगिमा से दर्शकों को आकर्षित किया जा सकता है। लबारी को वे राम-सुपर्णखा संवाद से जोड़ते हैं जहाँ भगवान राम यह जानते हुए भी कि लक्ष्मण विवाहित हैं, सिर्फ मसखरा के लिए सुपर्णखा को लक्ष्मण के पास भेजते हैं। कला के प्रति वे इतने समर्पित और वचन के इतने पक्के थे कि अपनी पत्नी के निधन पर भी घर नहीं जाते हैं क्योंकि उन्होंने नाच का सट्टा ले रखा था। उनका मानना था कि किसी भी परिस्थिति में नाच बंद नहीं होना चाहिए। क्योंकि दुबारा जब नाच दल एकत्रित होता है तो मलिक जी की पत्नी के निधन के कारण सारे चेहरे शोक-संतप्त दिखते हैं तब भिखारी उन्हें समझाते हैं कि इस प्रकार रोनी सूरत लेकर नाच नहीं होगी, अपने गम को अपने अंदर जब्त करना होगा –"ना बाचा ना! आँसू छलक आवे, गला भर जाए तो छिपा लेना है। ई हे तो असली पाट (अभिनय) है।"[64]

सबको समझा तो देते पर नाच के बाद वे स्वयं एकाकी में घुलने लगे। पत्नी को समय पर पानी न देने का मलाल उन्हें सालता रहा। इसलिए कुतुबपुर आते ही पहला काम उन्होंने कुआँ खुदवाकर पत्नी को श्रद्धांजलि अर्पित किया। ताकि और किसी दलित को गंगा का गंदला पानी पीकर मंतुरना देवी की तरह हैजे का शिकार होना न पड़े। क्योंकि गाँव में दलितों के लिए इसके पहले कोई अलग कुआँ न था। उन्हें साफ जल के लिए सवर्णों के कुएँ पर चिरौरी-मनौती करनी पड़ती थी कि यदि कोई दया करके पानी उनके बर्तन में डाल दे। जिसके कारण अछूत गंगा का मैला जल पीने के लिए विवश थे और यदा-कदा हैजा-कलरा जैसी बीमारी का शिकार होकर पूरा टोला का टोला साफ हो जाता था।

खैर नाच दल यहाँ से असम का सफर तय करता है। कुछ प्रारंभिक असफलता के बाद यहाँ पर भी बिदेसिया की धूम मच जाती है। यहाँ के सिनेमा हॉल बंद के कगार पर पहुँच जाते हैं। तब सिनेमा घर के मालिकों और कलेक्टर के आपसी साँठ-गाँठ के कारण कलेक्टर उन्हें असम छोड़ने का फरमान जारी करते हैं और दल पहुँच जाता है कलकत्ता। विदेश जाने की

---

64. संजीव, 'सूत्रधार', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 238

भी पूरी तैयारी हो जाती है पर मलिक जी के बीमार पड़ जाने के कारण उनका मन बिदक जाता है और मॉरिसस का सफर बातिल कर देते हैं।

अत: अंत में हम यह कह सकते हैं कि संजीव ने इस उपन्यास के माध्यम से एक ऐसे विलक्षण हीरा को यहाँ प्रस्तुत किया है जो जीवन भर दलित-पीड़ित रहकर जाति व्यवस्था से लड़ते हुए, मर्यादित रहते हुए, नाच के माध्यम से समसामयिक समस्याओं को उठाया।

रह गईं दिशाएँ इसी पार

'रह गईं दिशाएँ इसी पार' संजीव का नवीनतम उपन्यास है। वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई यह अपने तरह का एक अनूठा उपन्यास है, जिसमें जीवन-मृत्यु, शोध, अमरत्व, टेस्ट-ट्यूब बेबी, ईश्वर, सेक्स इत्यादि को प्रयोगशाला में लाकर खड़ा कर दिया गया है। समय के साथ मनुष्य की रुचि में भी परिवर्तन हुआ है। विज्ञान, कम्प्यूटर और इंटरनेट आज मनुष्य की रुचि के केंद्रबिन्दु हैं। विज्ञान जहाँ एक ओर हमारे लिए वरदान सिद्ध हुआ है, वहीं दूसरी ओर अभिशाप भी बनता जा रहा है। प्रस्तुत उपन्यास एक वैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें पूँजीपति वर्ग विज्ञान और वैज्ञानिकों का दोहन अपने हित में कर रहा है। अमेरिका की पूँजी ने न जाने कितने भारतीय वैज्ञानिकों को अपने हरम में सजा रखा है। अथाह संपत्ति का मालिक मि. विस्नु विजारिया अजर और अमर होना चाहता है, चिर युवा रहना चाहता है और इसके लिए वह नाना तिकड़म आजमाता है। वह रेड फ्लेश, फिश और यहाँ तक की मनुष्य के मांस व्यापार का बड़ा तस्कर है। वहीं दूसरी ओर धर्म-कर्म के नाम पर मंदिरों, अनाथाश्रमों और चर्चों में दान भी करता है। मि. विस्नु विजारिया ने कोलकाता को ही अपने जुर्म की राजधानी बना रखा है, जहाँ अपने निवास स्थान 'लालकुठी' के पास ही 'जान नर्सिंग होम' और साल्टलेक में 'गिरधारी करणी देवी बाल भवन' में अपने हित के लिए डाक्टर और अनाथ बच्चों को पाल रखा है। आज उसके इस जाल में एक नया शिकार फँसने जा रहा है – बोटानिस्ट अजय, जो अपने भाई के कैंसर के इलाज के लिए 1000 कि.मी. दूर से कोलकाता आया है, यहाँ उसकी मुलाकात जान नर्सिंग होम के स्त्री रोग विशेषज्ञ मि. जैक्सन से होती है और यह मुलाकात 'सुपारी' की 50 कैलोरी की उपयोगिता से लेकर इसमें पाये जाने वाले

'निकोटिन' की विनाशिता, जो कैंसर का कारण बनता है और जिसके इलाज के लिए अजय राजस्थान से कोलकाता आया है, तक के बहस में परिणित होती है। अतः संजीव यहाँ भारत में बढ़ती हुई कैंसर रोग की समस्या से चिंतित दिखते हैं और गुटखा, पान, तम्बाकू इत्यादि के सेवन को इसके एक कारण के रूप में रेखांकित करते हैं। परंतु उपर्युक्त नशीले पदार्थ का सेवन न करने वाला व्यक्ति भी आज इस रोग के चपेट से दूर नहीं है। भारत के क्या ग्रामीण और क्या नगरीय समाज, महिलाएं अधिकतर बच्चादानी और ब्रेस्ट कैंसर की समस्याओं से पीड़ित पाई जा रही हैं। अधिकतर गर्भ-निरोधक उपाय जैसे – कॉपर टी, माला डी. या आई. पील, गर्भधारण हो जाने के बाद एवॉर्सन के लिए उपयोग में लाई जाने वाली अवैध पील, एक्सरे, सी.टी. स्कैन, एम. आर. आई. के दौरान निकलने वाली अल्ट्रा वाइलेट किरणें, एंटीबायोटिक्स का अत्यधिक उपयोग, बिना डाइगोनिस्टिक के गलत दवाओं का प्रयोग इत्यादि कैंसर का कारण हो सकते है। उपन्यास में डा. विशाल गलत इलाज का शिकार हो जाता है, जिसके कारण उसका बल्ड प्लेटलेट्स बनना बंद हो जाता है, यानी कहीं कट जाए तो ब्लीडिंग बंद ही नहीं होती – "मैंने बार-बार कहा कि गलत हो रहा है, गलत हो रहा है, पर मेरी सुने कौन। डांट देते मुझे, 'डाक्टर मैं हूँ या आप? वो तो एक दिन मैंने कहा कि मैं खुद सांइटिस्ट हूँ, मेरी प्रॉब्लम ये है, आपका ट्रीटमेंट ये। यह ट्रीटमेंट मेरी सेल को डैमेज कर रहा है। मैं हरजाना ठोंकने जा रहा हूँ, तब जाकर माने।"[65] जरूरी है कैंसर के प्रति समाज को सचेतन करने की। सुना है अभी मेन्स शुरू होने से पहले बच्चियों को एक वैक्सिन दिया जा रहा है जो भविष्य में उन्हें बच्चादानी के कैंसर से बचाएगा, इस प्रकार से समाज में इससे बचाव के उपाय की जानकारी होनी चाहिए क्योंकि हमारे देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार जानकारी ही बचाव है। मि. विस्नु विजारिया के *'अस्तित्व रिसर्च सेन्टर'* में मनुष्य से लेकर जानवरों तक पर रिसर्च होता है। यहाँ चूहों में पहले कैंसर ग्रोथ करवाया जाता है, फिर उसके उपचार के लिए उस पर दवा का प्रयोग होता है। उसी प्रकार चूहों पर जीन का परीक्षण भी चलता है कि

---

65. संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 85

वह कौन-सा जीन्स है जिसके कारण माँ-बाप का लक्षण उनके बच्चों में आ जाता है। यानी अंधे चूहा-चुहिया के बच्चे भी अंधे पैदा होते हैं। अर्थात मनुष्य को जो-जो बिमारियाँ होती हैं, उन बिमारियों को पहले चूहों में ग्रोथ करवाया जाता है फिर उस पर दवा का प्रयोग किया जाता है। मि. बिजारिया अपने अनाथालय में बच्चों को पालता है और जब चाहे वह उन पर भी चूहों जैसा प्रयोग चलाता है।

यहीं अजय और मि. जैक्सन के बातचीत के दौरान संजीव भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का गुणगान करते हुए इसे पश्चिमी संस्कृति से बेहतर बताते हैं। यहाँ बुजुर्गों को सम्मान के साथ-साथ घर के मुखिया के रूप में देखा जाता है जबकि पश्चिमी देशों में मि. जैक्सन के शब्दों में – "थैंक्स। हमारा यहाँ बूढ़ों से कोई बाट नहीं करटा। आपने किया।"[66] परंतु अब भारत में बढ़ती हुई वृद्धाश्रम की संख्या हमारी परंपरा, संस्कार और संस्कृति के लिए चुनौती है। इसी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है कि अपने बेटे जिम के जन्मदिन पर मि. विस्नु बिजारिया मेहमानों के बाद पहुँचते हैं। इस पार्टी में सब एक-दूसरे से दिल से मिलने के बजाय सिर्फ औपचारिकता के लिए मिल रहे हैं। यहीं अजय की मुलाकात विशाल-जेनेटिक्स सांइटिस्ट से होती है, परंतु इन सब से बेखबर जिम अपने में ही खोया है। जिम से अपना परिचय बढ़ाने के लिए अजय सुंदरवन देखने का कार्यक्रम रखता है जिसमें जिम के साथ उसके महिला मित्र, माँ एलिस, विशाल और देबू ठाकुर शामिल होते हैं। संजीव यहाँ सुंदरवन की सुंदरता का वर्णन करते हैं –"ये औनी-पौनी, छैली-छितराई डालियों वाले पेड़ जैसे कोई हसीना फैले घाघरा को दोनों हाथों से उठाये नदी में उतर रही हो।"[67] इतनी सुंदरता के बावजूद इस क्षेत्र के विकास न होने का प्रमुख कारण नमकीन जल, दलदली, जंगलों से ढंकी भूमि और गंदला पानी है। राजस्थान जैसे क्षेत्र में 25-30 कि.मी. की दूरी पर जल नसीब हो जाता है परंतु कैनिंग का यह क्षेत्र जल के मामले में उससे भी बदनसीब है। संजीव ने यहाँ दो प्रश्न उठाये

---

66. संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 18

67. वही, पृष्ठ संख्या – 31

हैं एक, जंगल के अंधाधुंध कटाई का जिसके कारण बाघ जैसे जानवर अब गाँवों में घुसने लगे हैं और दूसरा, सुंदरवन के फूड्स हैविट्स में परिवर्तन का –"माइ गॉड ! टाइगर सेलाइन वाटर पीता है और मंकी मछली खाता है। एलिस को पहली बार रुचि जगी।"[68] स्वच्छ जल के आदि बाघ खारा पानी पीने के कारण मैन इटर्स हैं क्योंकि सागर का पानी खारा, खून भी खारा। वे इसी अनुकूलन में ढल चुके हैं। लेखक ने यहाँ अजय के माध्यम से अशोधित मधु में पाये जाने वाले एक ऐसे खट्टे तत्व का जिक्र किया है जो कामशक्ति को बढ़ाता है। लखनऊ के शोध संस्थान के वैज्ञानिकों ने पता लगाया है, यह वियाग्रा से भी अधिक प्रभावी है। परंतु इस पर भी जिम की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आती है। जिम से घुल-मिल न पाने के कारण अजय को फटकार लगाते हुए, बात गुप्त रखने के शर्त पर मि. जैक्सन रहस्योद्घाटन करते हैं कि जिम एक टेस्ट-ट्यूब बेबी है। इंगलैंड में, एलिस का गर्भाशय एलर्जीक होने कारण बच्चा वहन का क्षमता नहीं रखता था। तब मेरे साथ डाक्टरों की एक टीम ने एक उपाय पर विस्नु और एलिस से हामी भरवाई –"अगर निषेचन के बाद डिंब या भ्रूण को फेलोपियन ट्यूब में थोड़ा डेवेलॉप कर बाकी डेवेलॉपमोन्ट को किसी अन्य गर्भाशय में कराया जाए तो ...? हाँ यही उपाय है, एकमात्र यही उपाय।"[69] परंतु इसके लिए दूसरी महिला की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपनी माँ कैथरिन को चुनकर एलिस ने सबको आश्चर्यचकित कर दिया। गुप्त रूप से प्रक्रिया पूर्ण करने के पाश्चात् एक वर्ष के बाद जिम को गोद में लेकर एलिस भारत लौटी। संजीव ने यहाँ डा. जैक्सन के माध्यम से कहा है कि इसे हौवा बनाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भारतीय समाज अभी टेस्ट-ट्यूब बेबी के लिए परिपक्व नहीं हुआ है, बल्कि जिम से मिलकर उसे समझने की आवश्यकता है। भारतीय समाज में जहाँ रिश्तों का इतना महत्व है। बच्चे दादा-दादी, नाना-नानी, मौसी, माँ, पिता इत्यादि सभी के प्यार पर अपना अधिकार समझते हैं, वहीं कहीं जिम रिश्तों के भंवरजाल में उलझ कर तो नहीं रह गया –

---

68. संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 32

69. वही, पृष्ठ संख्या – 41

"जिम अपनी माँ को क्या कहेगा– माँ या बहन? क्या कहेगा अपनी नानी को - नानी या माँ? और विस्नू विजारिया को – पापा या जीजा? इस तेज रफ्तार से भागती दुनिया में किसी रिश्ते का कोई मतलब बचा भी है क्या?"[70] परंतु **'तूफान और किनारा'** शीर्षक के अंदर अजय और जिम आपस में टेस्ट-ट्यूब बेबी पर चर्चा करते है और जिम यह स्वीकार कर लेता है कि वह टेस्ट-ट्यूब बेबी है – "आय नो दैट, आय एम ए टेस्ट-ट्यूब बेबी, गुण और मात्रा में जो भी फर्क आये।"[71] प्रश्न यह है कि क्या टेस्ट-ट्यूब बेबी एबनॉर्मल होते हैं। जिम कहता है - -"आपका आपका ही नहीं, किसी का भी जन्म मेरे जन्म से अलग कहाँ है – वही शुक्राणु, वही डिंब, वही क्रोमोजोम्स, वही डी. एन. ए. का चक्कर, वही भ्रूण, वही विकास, वही प्रसव... दिस एंड दैट।"**[72]** डॉ. विशाल के लेख के अनुसार हमारे देश में भी अब रिश्तो को नए आयाम देने की जरूरत है। पारंपरिक ढाँचों को सत्य की कसौटी पर परखने की जरूरत है। मुसलमानों में चचेरे भाई-बहनों में शादी होती है। दक्षिण भारत में मामा-भगिनी में रिश्ता होता है। मगर हमारे यहाँ नहीं होता इसलिए अटपटा लगता है। इसी प्रकार हमारा समाज अभी टेस्ट-ट्यूब बेबी के लिए परिपक्व नहीं हुआ है।

'इट इज सिम्पली इम्पॉसिबल' शीर्षक के अंदर **'सेक्स चेंज'** पर चर्चा की गई है। हमने पहले सुना था कि माइकल जैक्सन ने अपना सेक्स चेंज करवाया था। परंतु यहाँ छह बहनों का एकलौता भाई शाहनवाज होमो है और डा. जैक्सन के अनुसार वह इस द्वैद्य स्थिति को ज्यादा दिन तक सहन नहीं कर पायेगा। आखिरकार शाहनवाज सेक्स चेंज के लिए राजी हुआ –"दफ्तर से मेडिकल अवकाश ले लिया शाहनवाज ने, फिर शुरू हुआ हार्मोन्स ट्रीटमेंट और ओस्त्रोपचार का दौर और शाहनवाज मर्द से औरत बनता गया।"[73] परंतु हमारे समाज

---

70. संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 43

71. वही, पृष्ठ संख्या – 219

72. वही, पृष्ठ संख्या – 220

73. वही, पृष्ठ संख्या – 161

में भी सेक्स चेंज को लेकर द्वैद्य की स्थिति है। एक तरफ परंपरागत भारतीय समाज है जिसकी मानसिकता अभी इसे स्वीकारने के लिए परिपक्व नहीं हुई है, दूसरी तरफ गेलेस्बियन्स और कुछ नारी संगठन हैं, जिनका मानना है कि व्यक्ति अपने शरीर के साथ कैसे सलूक करे यह उसका निजी मामला है और आने वाले समय में होमो व्यक्ति भी अपनी इच्छा और फिजिकल डिमांड के अनुसार अपना जेंडर चेंज करने के लिए स्वतंत्र होगा ऐसी स्थिति में समाज को इस तरह की समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। क्योंकि अब हिजड़े खुद को सेक्स के डिप्राइब्ड स्थिति से बाहर निकालने को स्वतंत्र हैं। आज मेडिकल साइंस आर्गेन ट्रांसप्लांट करने में सक्षम है। किडनी, आँख, लीवर इत्यादि का ट्रांसप्लांट एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में किया जाता है। हाल ही में कोलकाता में एक मृत व्यक्ति के लीवर का ट्रांसप्लांट दो जीवित व्यक्तियों में सफलतापूर्वक किया गया। परंतु चिंता का विषय यह है कि शाहनवाज से शहनाज बनने पर भी वह पुरुष की काम-क्रिया को तृप्त नहीं कर पायी और अंततः अख्तर से तलाक हो गया। यानी हिजड़े के लिए मझधार की स्थिति बनी रही। और हार्मोन ट्रीटमेंट के द्वारा शरीर से खोद-खोद कर निकाले गए अंग काम न आ सके। इसी प्रकार आज बाजार में उपलब्ध अधिकाशंतः सुन्दर-सुन्दर फल, फूल, सब्जियाँ इत्यादि सस्ते टॉक्सीन हार्मोन इंजेक्शन द्वारा उगाये जा रहे हैं जो हमारे स्वास्थ्य के लिए बेहद खतरनाक हैं। सबसे ज्यादा अत्याचर गाय, भैंस पशुओं पर किया जा रहा है। जिस गाय या भैंस का दूध हमारे यहाँ बच्चा से लेकर बुर्जुग तक पीते हैं उसमें हार्मोन की मात्रा मिल रही है, यानी भविष्य की पूरी भारतीय पीढ़ी को कमजोर और शिथिल बनाई जा रही है। बछड़े को चुपके-चुपके विस्नु विजारिया जैसे कसाइयों को बेच दिय जा रहा है और उसके स्थान पर भैंसों को रोज 50 पैसे का टॉक्सीन इंजेक्शन लगाकर पैन्हाया और दूहा जा रहा है। संजीव ने इसे भीतरी आतंकवाद करार दिया है –"खोका के चेहरे पर वक्त से पहले मूंछ-दाढ़ी झलकने लगी है। बच्ची के सीने में वक्त से पहले उभार। दोनों हार्मोन के इंजेक्शन वाला दूध पीते है।"[74] इन सारे क्रिया-कलापों से हमारे जीवन की

---

74. संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 90

अवधि कम हो रही है। बाल वक्त से पहले सफेद हो रहे हैं, हड्डियों में ताकत ही नहीं रह रही है, जरा-सा गिरे नहीं कि हड्डियाँ चटक गईं। शरीर नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो रहा है। क्योंकि शरीर के अंदर प्रतिरोधक क्षमता ही कम होती जा रही है। और इसी समय डॉ. विशाल के एजिंग और ह्यूमन क्लोनिंग पर एक-एक करके दो परचे छप चुके थे। इसे संजीव ने **'चिर जीवन, चिर यौवन'** शीर्षक के अंदर उद्‌घाटित किया है। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा चिर युवा रहने की होती है, वृद्ध कोई नहीं होना चाहता। परंतु समय के चक्र में सब पीसता है, वृद्ध भी होता है और मृत भी। प्रयोग के लिए डॉली क्लोन तैयार किया गया था, परंतु वह तेजी से वृद्ध हो रही थी, जिसके कारण उसे मार देना पड़ा था और इसी एजिंग (तेजी से बढ़ती उम्र) के ऊपर विशाल का पेपर था। यह पेपर पढ़कर बनिया बिस्नु बिजारिया विशाल के सामने था और अपने को चिर युवा बनाये रखने का उपाय उससे पूछ भी रहा था और उसे सिर्फ उसके लिए काम करने को मना भी चुका था। वैज्ञानिकों का मनना है कि मेटाबॉल्जिम की क्रिया को तेज कर मनुष्य की उम्र बढ़ाया जा सकता है –"यह ऑक्सीजन ही है जो प्राण वायु के रूप में संजीवनी बांटता चलता है और यह ऑक्सीजन ही है जो अपने साथ कुछ जहरीले फ्री पार्टिक्लस लाता है जो मेटाबॉल्जिम की क्रिया को मंद कर डी. एन. ए. को नुकसान पहुँचाते हैं, आदमी बूढ़ा होता जाता है।"[75] हमलोग जानते हैं कि शरीर के बहुत से अंग जो खराब हो जाते हैं उनका ट्रांसप्लांट किया जाता है, जैसे किडनी खराब हो जाने पर किसी दूसरे व्यक्ति का किडनी लगाया जाता है परंतु वह होता है व्यक्ति के प्राण रक्षा के लिए। परंतु मि. विस्नु विजारिया जैसे बड़े उद्योगपति अपने को युवा बनाये रखने के लिए इनएक्टिव आर्गेन का ट्रांसप्लांट करवाते हैं और इस कार्य के लिए वे कुछ बच्चों को अपने अनाथालय में पाल कर उनमें वे अंग डेवलप करवाकर अपने शरीर के लिए उन अंगों का इस्तेमाल करते हैं। यानी सिर्फ अपने को चिर युवा बनाये रखने के लिए मासूम बच्चों की जिंदगियों से खेलते हैं और अब ह्यूमन क्लोनिंग के माध्यम से मनुष्य के बुढ़ापे को रोकने की कोशिश की जा रही

---

75. संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 120-121

है। और इसी क्लोन के चक्कर में लारा अपने पिता के क्लोन को अपने भ्रूण में धारण करने का संकल्प लेती है जिसके कारण उसका परिवार ही उसे मार देता है। लेखक ने क्लोन बनाने की प्रक्रिया को दिखाया है –

"विनायक बाबू की देह-कोशिका लो। रेड्डी ने समझाया।

"लिया।" दस्तीदार ने हामी भरी।

"अब उसका न्यूक्लियस निकाल लो।"

"निकाल लिया।"

"अब लारा की डिंव कोशिका लो।"

"लिया।"

"उसका न्यूक्यिलयस निकाल लो।"

"लिया।"

"अब देह कोशिका के न्यूक्लियस को डिंव कोशिका के साइटोप्लाज्म में प्रतिरोपित कर दो।"

"किया।"

"डिंव कोशिका को लारा के गर्भ में रख दो। हो गया क्लोनिंग। किसी की भी बना लो।"[76]

खैर इस विज्ञान की दौड़ में किन्नर भला कैसे पीछे रहते। संजीव ने **'बाइरे बहुत लोक'** शीर्षक के अंतर्गत दिखाया है कि गाइको और लेस्बियन्स के प्रतिनिधि डॉ. विशाल से मिलने आती हैं और प्रजन्न में पुरुष की भूमिका पर प्रश्न पूछती है। वे समलैंगिकता की पक्षधर हैं और उनका तर्क है कि महिलाएँ खुद भी चाहे तो बिना पुरुष के भी संतान उत्पन्न कर सकती हैं। तब डा. विशाल कहते हैं कि वे सिर्फ लड़कियाँ ही होगीं, लड़का नहीं। वे विशाल से समलैंगिकता का प्रोत्साहन चाहती है, खैर अब हमारे देश में समलैंगिकता को वैधता प्रदान की जा चुकी है।

---

76. संजीव, 'रह गईं दिशाएँ इसी पार', पहला संस्करण : 2012, पहली आवृत्ति : 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 129

इस प्रकार संजीव ने जीवन के संवेदनात्मक पक्षों रिश्ते-नाते, संबंध, समाज, मनुष्य का लालसा इत्यादि को वैज्ञानिक धरातल पर परखने का प्रयास किया है।

फाँस

भारत एक कृषि प्रधान देश है और भारतीय अर्थव्यवस्था में किसानों का बहुत बड़ा योगदान है परंतु उनकी खुद की स्थिति आज संकट के दौर से गुजर रही है। किसानों के आत्महत्या का सिलसिला थमने का नाम ही नहीं ले रहा है। यद्यपि भारतीय किसानों पर रचना की कोई कमी नहीं रही है। प्रेमचंद जैसे बड़ रचनाकार ने किसानों की समस्याओं को उठाया था परंतु उसका निदान आज तक हमारी सरकारें नहीं ढूँढ़ पायी। जिस महाजनी सभ्यता के विरुद्ध प्रेमचंद थे वही रूप बदलकर बैंकों के रूप में आती रही और किसानों की बलि लेती रही। आज भी भारतीय किसान भाग्यवादी हैं अर्थात उसके पास सिंचाई, कटाई, बुआई के समुचित साधन उपलब्ध नहीं हैं अधिकतर समय तो उनके कटे हुए फसल बारिश के कारण नष्ट हो जाते हैं। एफ.सी. आई. में गोडाउन की भारी किल्लत के कारण कई मन अनाज बारिश में पड़े-पड़े सड़ जाते हैं। यह उस देश का हाल है जहाँ आज भी कुपोषण और भूख से मौतें होती है। और यदि इस प्राकृतिक आपदाओं से फसल बच भी गई तो किसानों को उन फसलों का न्यायोचित मूल्य नहीं मिलता। सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त करने के लिए उन्हें कई-कई दिनों तक मंडियों के बाहर अनाज की गाड़ियाँ लेकर खड़ा रहना पड़ता है और हारकर किसान अपनी फसल औने-पौने दामों पर बिचौलियों को बेचने के लिए विवश हो जाता है। प्राकृतिक आपदा के क्षेत्र में बैंकों और महाजनों का कर्ज न चुका सकने के कारण आज किसान फाँसी लगाने को विवश हैं। किसानों की इन्हीं सब समस्याओं को लेकर प्रेमचंद के कड़ी को आगे बढ़ाते हुए संजीव का यह नवीनतम उपन्यास 'फाँस' है।

जैसे कि संजीव क बारे में हम जानते हैं कि वह किसी भी रचना को लिखने से पहले रचना की विषय-वस्तु को लेकर शोध की प्रक्रिया से गुजरते हैं। आज देश में पिछले कई वर्षों से किसानों की आत्महत्या का सिलसिला रुकने का नाम ही नहीं ले रहा है। पिछले एक दशक में लाखों किसान कर्ज के कारण आत्महत्या कर चुके हैं। विदर्भ में तो यह आकड़ा और भी भयावह है। संजीव ने महाराष्ट्र के भक्तमाल जिले के 'बनगाँव' गाँव को आधार बनाकर पूरे

भारतवर्ष के किसानों की दशा का चित्र खींचने का प्रयास किया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र शिबू और शकुन के पास दो एकड़ की खेती है। एक एकड़ ऊँचास और एक एकड़ निचास पर। पहला एकड़ कापूस के लिए तो दूसरा एकड़ धान गेहूँ के लिए। शिबू और शकुन की दो लड़कियाँ भी हैं, सरस्वती और कलावती। परिवार के इन चारों सदस्यों के जीने का आधार उपरोक्त दो एकड़ खेती। कीचड़ पानी युक्त जमीन में खेती के लिए हाल्या की जरूरत थी, परंतु वे एक बैल से ही काम चलाते थे, दूसरा बैल किसी से उधार माँगना पड़ता था। दोनों लड़कियाँ पढ़ती थीं, परंतु छोटी कलावती पढ़ाई के अतिरिक्त शेती-शेतकरी, राजनीति, पत्रिकाएँ, कारपोरेट सेक्टर आदि मुद्दों पर अपने सहपाठी अशोक से बातें किया करती थी। उसे इस बात का एहसास था कि हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद भी किसान आज भूखा है, आत्महत्या करने को विवश है। अपना भाग्य बदलने में असमर्थ है।

बाहरी कुदृष्टि से बचाने के लिए दोनों लड़कियों का स्कूल छोड़वाकर जंगल में महुआ बिनने भेजा गया पर वहाँ भी वन विभाग के सिपाही खुदाबख्स ने कलावती से जबरदस्ती करने की कोशिश की। पिता जल्द से जल्द लड़कियों का विवाह करना चाहते थे। परंतु सुनील काका का कर्ज न लेकर राणाप्रताप की तरह दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ काम करने का उपदेश आड़े आ जाता –"शकुन हँसकर उड़ा देती –पत्तलों में नहीं खा रहे?...या कि जमीन पर नहीं सो रहे? लेकिन कोई भी तपस्या आज तक फलवती हुई क्या? कहने को दो एकड़ की शेती! मिला क्या? कापूस तो एकदम से दगा दे गया, मका सिर्फ नाम का जो थोड़ी बहुत उम्मीद है, वह धान से। वह भी कितनी! दो साल से तो सूखा है। यह तो कहो, पास ही जंगल है जिससे बहेरा, शाल के बीज, मावा, बाँस, लकड़ी आदि से कुछ-न-कुछ मिल जाता है, वरना तो ब्राह्मणों की टहलुअई करते बीतती। वर्षों पहले कापूस का नया बीज आया तो एक आस जगी थी। वो भी साला नपुंसक निकला। अब चारों तरफ निराश किसानों का एकमात्र अवलंबन बचा जंगल। उस पर भी वन-विभाग का नया फरमान-छूना मत?"[77] उपरोक्त कथन किसानों

---

77. संजीव, 'फाँस', प्रथम संस्करण : 2015, द्वितीय संस्करण : 2016, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 25-26

की विवशता को रेखांकित करती है। किसानों को कापूस का जो नया बीज दिया गया था। वह पूरी तरह से असफल रहा और इस प्रकार खेती से असफल किसानों, आदिवासियों के लिए जिने का एक दूसरा सहारा बचता है, जंगल। जंगलों से आदिवासी बहेरा, मावा, बाँस आदि लेते थे आज वहाँ से एक दतुवन तक लेने का उनको अधिकार नहीं। विकास के नाम पर आज वहाँ वन-विभाग का कब्जा है। शिबू और शकुन का सभी देवी-देवता की मिन्नत बेकार गई, उनकी स्थिति में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आया। अंत में शकुन ने बौद्ध धर्म अपना लिया और अपनी लड़कियों को फिर से स्कूल, भेजने का निर्णय लिया। यह समाज की सच्चाई है कि समाज में लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग मापदंड हैं। लड़कियों के चलने-फिरने, बोलने, पढ़ने, बाहर रहने आदि पर नाना तरह के प्रतिबंध हैं जिसकी झलक हमें उपन्यास के शुरुआत में ही मिल जाती है। जब छोटी कलावती अपने स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए अपनी सहेली मंजूला के गाँव चली जाती है। गाँव में तूफान खड़ा हो जाता है। लड़कियों को पढ़ाने पर प्रश्न चिन्ह लगाये जाते हैं और परिणामस्वरूप शिबू लड़कियों का स्कूल जाना बंद करवा देता है। परंतु जब जंगल के सिपाही खुदाबख्श भी कलावती का हाथ पकड़ लेता है तो एक पिता होने के नाते शिबू कमजोर पड़ जाता है। वह चिंतित हो जाता है कि अपनी मुलगियों की रक्षा वह किस-किस से करेगा और इसका एक ही समाधान उसे नजर आता है मुलगियों का विवाह। पर विवाह का खर्च यानी कर्जा और सुनील काका की सख्त हिदायत है कि कोई कर्ज न ले। तो लड़कियों का विवाह होगा कैसे?

यद्यपि कर्ज तो बड़े-बड़े उद्योगपति भी लेते हैं परंतु उनके लिए बैंकों के मानदंड अलग हैं माल्या, नीरव मोदी जैसे लोग बैंकों का कर्ज लेकर देश छोड़ देते हैं। बस! परंतु किसानों को थोड़े कर्ज के बावत में अपना प्राण छोड़ना पड़ता है। उपन्यास में शकुन कहती है –"इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है।"[78] छोटी कहती है कि कारपोरेट जगत हमेशा बाजार में अपनी ग्राहक बनाये रखने के लिए आपूर्ति नहीं

---

78. संजीव, 'फाँस', प्रथम संस्करण : 2015, द्वितीय संस्करण : 2016, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 15

करते जबकि किसानों के पास अन्न के भंडार सड़ रहे होते हैं। सरकारें उन्हें नहीं खरीदती हैं किसान अपना अनाज सड़क पर फेंकने और आत्महत्या करने पर विवश है। वह आगे जोड़ती है कि पिछले साल सात हजार किसानों ने आत्महत्या कर ली परंतु मीडिया को साँप सूंघ गया। ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में सब कुछ बिकाऊ है। बड़े उद्योग छोटे-छोटे उद्योगों को निगलते जा रहे हैं, घाटे में चलने वाली कंपनियाँ बंद कर दी जा रही हैं। संजीव यहाँ रेखांकित करते हैं कि सबसे ज्यादा घाटा में चलने वाला उद्योग कृषि है, उपन्यास में रेखांकित है कि अब तक 80 लाख किसान खेती छोड़ चुके हैं परंतु वे खेती को धंधा नहीं अपितु लाइफ स्टाइल मानते हैं जिसे किसान किसी भी धंधे के कारण नहीं छोड़ सकते। किसान अपने खेतों-खलिहानों, मवेशियों से भावात्मक रूप से जुड़े रहते हैं –"माकडू घर का वासरू है। मकरी गाय की निशानी। उसके बाद गाय नहीं ले पाये हम। उसे मत बेचना।"[79] सारा जीवन खेती करने के बाद भी मोहनदादा अत्यंत विपन्न हैं और बुढ़ापे में भी नाना से किसी काम के बारे में पूछते हैं, तो नाना कहता है –"काम तो इन दिनों एक ही है – बालू, मिट्टी, ईंट या खाद की ढुलाई। सड़कों के किनारे सारी खेती करने वाली जमीनें बिक चुकी हैं। मकान बन रहे हैं। आने वाले दिनों में सिर्फ बिल्डिंगें होंगी, चमचमाती सड़के होंगी और चमचमाती गाड़ियाँ। न हमारे तुम्हारे जैसे लोग होंगे, न शेती, न हमारी-तुम्हारी बैलगाड़ियाँ।"[80] अर्थात बढ़ती आबादी के कारण खेती की जमीन वैसी ही छीनती जा रही है और खपत बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में इतनी बड़ी जनसंख्या का पेट भरना एक चुनौती का कार्य है। सुखा के कारण किसानों का हाल बेहाल है और इसी कारण मोहन दादा अपने पड़ोसी माधव के साथ कृषि दफ्तर लोन के लिए पहुँचते हैं। जहाँ कृषि अधिकारी उनके साथ क्रूरता का व्यवहार करता है। चुनव के समय विभिन्न पार्टियों के कंडीडेट इन किसानों से बड़े-बड़े वायदे करते हैं और किसानों के वोटों से

---

79. संजीव, 'फाँस', प्रथम संस्करण : 2015, द्वितीय संस्करण : 2016, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 16

80. वही, पृष्ठ संख्या – 36

जब नेता बन जाते हैं तो किसानों को भुला दिया जाता है। बैंकों में हिरोहोंडा खरीदने के लिए लोन उपलब्ध है परंतु किसानों के लिए नहीं। मोहनदादा कृषि दफ्तर से खाली हाथ लौटते हैं। उनका एकमात्र पशु बैल जिसे वह भाई कहते हैं, चारा के अभाव में उसकी भी स्थिति खराब है। अंततः वह भाई को बाजार में शम्सुल के हाथों बेच देते हैं। शम्सुल को सब लोग कसाई कहते हैं और इस प्रकार गो-हत्या का दोष मोहन दादा पर आ जाता है और धर्म के पचड़े में पड़ कर पंडित निरंजन देव के आदेशानुसार गले में बैल का फंदा लगाकर एक वर्ष तक बैल की बोली बाँ-बाँ बोलकर भिक्षा मांगते फिरते हैं। यद्यपि मोहन दादा और सिंधुताई ने मिलकर अपने दोनों बच्चों को उच्च शिक्षा दी पर बच्चे दगा दे गए। इधर बी.टी. कापूस धोखा दे गया उधर बच्चे। खेत बेचकर पढ़ाओ और फिर खेत बेचकर नौकरी के लिए घुस दो –"जो पढ़ाई, शेती से घृणा करना सिखाये, स्वार्थी बनाये, वैसी पढ़ाई को चूल्हें में न डालूँ।"[81] इधर शम्सुल भी मोहनदादा से कहता है कि –"धनौर के एक शेतकरी दिल्लू ने अपने पाँच एकड़ खेत बेचकर प्यून की नौकरी पा ली।"[82] अर्थात अन्नदाता की सामाजिक स्थिति ऐसी हो गई है कि उसका विवाह होने में भी दिक्कत आ रही है, जबकि प्यून का विवाह पहले हो जा रहा है। खुद मोहनदादा भी अपने लड़की का विवाह किसान से न करके मजदूर से करते हैं और सदा भी यह घोषणा करता है कि अगले साल से वह शेती छोड़ रहा है। इस प्रकार खेती छोड़कर मजदूर बन जाना भी एक प्रकार का किसान की आत्महत्या ही है। खेती, कर्ज, सामाजिक और पारिवारिक असफलता किसान को अकेला और उदास कर दे रहा है, मोहनदादा की तरह। और यह एकाकीपन उनहें मृत्यु के तरफ खींचता है। प्रेमचंद जी ने भी **'पूस की रात'** कहानी में अभावग्रस्त किसान को खेती छोड़कर मजदूर बनते दर्शाया है। और इस प्रकार के कर्ज को चुकाने के लिए, शिबू और शकुन के परिवार में अजीब छटपटाहट है। गूढी पड़वा जैसे त्योहार पर भी पूरा परिवार पैसा बचाने के लिए सादा भोजन करता है। बैकों का 25 हजार का कर्ज

---

81. संजीव, 'फाँस', प्रथम संस्करण : 2015, द्वितीय संस्करण : 2016, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 41

82. वही, पृष्ठ संख्या – 44

चुकाने के लिए फसल बेच-बेच कर जोड़-तोड़ लगाकर 27 हजार रुपया इकट्ठा करके बैंक पहुँचाता है तो बैंक क्लर्क हिसाब लगाकर सुद मिलाकर कर्ज की कुल राशि 29 हजार नौ सौ साठ रुपया बताता है जिसे शकुन अपने गले की हँसुली बेचकर पूरी करती है। उपन्यास का यह प्रसंग बतलाता है कि किसान लिए हुए ऋण को चुकाने के प्रति कितना संवेदनशील है। वह कर्ज को गले का फाँस समझता है और जब किसी प्राकृतिक आपदा के कारण फसल मारी जाती है तो घबराकर वह जान दे देता है। सुनील काका जैसे हिम्मतवाले व्यक्ति जो सारे किसानों के लिए आदर्श थे और आत्महत्या को कायरता समझते थे, एक बार के सूखे में ही टूट गए और खुद फाँसी पर झूल गए। मुजतबा हुसैन फ्राँसीसी 'समाजशास्त्री ज्याँ बैचलर' (Jean Baechler) के हवाले से बताते हैं –"अनेक व्यक्ति नकारात्मक स्थिति से बचने के लिए आत्महत्या करते हैं जैसे भारतीय किसान बैंक का कर्ज नहीं दे पाने पर आत्महत्या करता है।"[83] आम इंसानों की तरह किसानों पर भी खेती के अतिरिक्त और भी सामाजिक दायित्व है, जिसमें एक है मुलगियों का विवाह। बैंक का कर्ज चुकाने के पश्चात शिबू और शकुन अत्यंत विपन्न हो चले थे, यहाँ तक कि खेती के बीज भी शकुन के कानबाली बेचकर लाया जाता है। ऐसी स्थिति में दो-दो जवान बेटियों के पिता की क्या स्थिति है। शिबू दिन रात अपने बेटियों के ब्याह के चिंता में डूबा रहता है, पर जहाँ पर भी बात चलाता है, दहेज आड़े आ जाती है और उधर अशोक और छोटी दिन-दुनिया से बेखबर एक दूसरे के तरफ खींचते ही चले जाते हैं।

परंतु निम्न मध्यवर्गीय समाज एक सामाजिक बंधन से बंधा होता है और सामाजिक दबाव व्यक्तिगत इच्छा से ज्यादा बलवती होती है। लोग छोटी और अशोक के पवित्र रिश्ते को बदनाम करते हैं और यह बदनामी छोटी का पिता शिबू नहीं सह पाता है और कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेता है। आत्महत्या पात्र घोषित की जाएगी या अपात्र यह रिश्वत पर निर्भर करता है क्योंकि उस परिवार के ऊपर बैंक का कोई कर्ज नहीं था। जबकि सब जानते हैं कि

---

83. हुसैन मुजतबा, 'समाजशास्त्रीय विचार', प्रथम संस्करण : 2010, पुनर्मुद्रण : 2012, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 114

यह पूरा परिवार ऋण चुकाने में ही बरबाद हो गया। इस ऋण को चुकाने में भी धर्म का बंधन, हिंदू धर्म हमें मृत्यु के पूर्व, सारे ऋण से मुक्त होने की ओर धकेलता है जब तक आप ऋण मुक्त नहीं होंगे आत्मा पर बोझ बना रहेगा और आत्मा मुक्त नहीं होगी। जबकि बड़े-बड़े उद्योगपति बैंकों का कितना-कितना कर्ज डकार जाते हैं उन्हें कुछ नहीं होता।

निष्कर्ष : संजीव के उपन्यासों का महत्व समाजशास्त्रीय दृष्टि से अधिक है। वे जनवादी कथाधारा के एक प्रखर एवं संवेदनशील कथाकार हैं। उनके उपन्यासों के कथ्य मौलिक ही नहीं अपितु अनेक संभावनाएं लेकर अवतरित होते हैं। अन्वेषी प्रवृत्ति का होने के कारण वे हमेशा अपने उपन्यासों के लिए अछूते संदर्भों की तलाश कर लेते हैं।

'अहेर' उनके प्रथम उपन्यास **'किशनगढ़ के अहेरी'** का पुनर्लेखन है। भूत-प्रेत, पूर्व-जन्म, सती-माई, बरम्ह बाबा, महावीरन स्वामी, अग्नि स्नान जैसे अंधविश्वासों से घिरा, शेखीबाज अहेरियों से भरा यह पिछड़ा गाँव प्रतीक है, शोषणतंत्र का। किशनगढ़ के माध्यम से लेखक ने भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव की शोषण व्यवस्था, आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव, राजनीतिक पचड़े आदि की टोह ली है। उपन्यास में लेखक ने शोषकों को नपुंसक कहा है जबकि दोहन-शोषण के खिलाफ संघर्षशील जनता के पुरुषत्व का गुणगान किया है। जमींदारों द्वारा औरतों का आखेट, हदबंदी, ऋण मुक्ति और बंधुआ मजदूरों की मुक्ति जैसे मुद्दों को उपन्यास में उठाया गया है। ब्रह्मचारी, ज्योतिष, ठाकुर, जमींदार, नेता, सभी मजबूर स्त्रियों के साथ बलात्कार करते हैं। उपन्यास के अंत में चाँदनी के साथ कुछ नवयुवक आंदोलन करते दिखाई पड़ते हैं जो अन्याय, शोषण के विरुद्ध आशा की एक नई किरण जगाते हैं।

'सर्कस' में उन्होंने पहले-पहल सर्कस कलाकारों के दर्द को महसूसा। सर्कस के बाह्य चमक-दमक के साथ सर्कस की अंतरिम दुनिया, अशिक्षित और असंगठित सर्कस कलाकारों की पीड़ा, शोषण, संघर्ष, सर्कस मालिकों की चालाकियाँ, धर्म, मृत्यु, काम, भय, जोखिम और आकर्षण का बहुत परिपक्व वर्णन हुआ है। सर्कस के बाह्य चकाचौंध भरी दुनिया, ग्लैमर, लाइट और साउंड के पीछे दबती, घुटती कलाकारों की सिसकियाँ और जलालत भरी जिंदगी है। मेहनत कश श्रमिकों को उनके परिश्रम का उचित कीमत नहीं मिल पाता है और इसका

प्रतिरोध करने की क्षमता उनमें नहीं है। सर्कस की महिला कलाकारों का मानसिक और शारीरिक शोषण होता है। एक बंधुआ मजदूर की भाँति सर्कस की लड़कियाँ *'सर्कस ओनर्स एसोसियशन'* के आदेश के तहत किसी भी सर्कस में जाने को बाध्य हैं। परंतु कलाकारों को ट्रैवेल कंसेसन, एल.आई.सी. की सुविधा, हैंडिकैप्ड पेंशन स्कीम इत्यादि अपने हितों के मुद्दों पर मिल-बैठकर बातचीत करने का अधिकार नहीं है। रूपा, बुलबुल दा और सोहन दा जैसे कलाकार घर वापस नहीं जाना चाहते हैं क्योंकि उनके घर वापस लौटने से घर वालों की बदनामी होती है। कई कलाकारों का तो जन्म और शादी-ब्याह सर्कस के अंदर ही हो जाता है।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में व्यवस्थागत विसंगतियाँ, कुटिलताएँ –शोषक, सूदखोर, ठेकेदार, रौबदार और भ्रष्टाचारी का रूप धारण कर यहाँ के गरीब मजदूरों को अपने आँच से जला रहे हैं। औद्योगिक त्रासदी को केंद्र में रखकर यहाँ चापलूसी, अविवेक, मजदूरों में प्रतिरोधी क्षमता का अभाव इत्यादि का रेखांकन है। कोयला खदानों में माफिया सरदारों का लूट-खसोट अनवरत जारी है। यूनियन, महाजन, शराबखाना और पुलिस प्रशासन सब इन्हीं के हैं। मैनेजर, एजेंट आदि इनकी इच्छा के गुलाम हैं। इसीलिए तो खदान दुर्घटना के जाँच के नाम पर लिपा-पोती, मुआवजा के नाम पर भ्रष्टाचार, मृत मजदूरों के आँकड़ों में हेर-फेर, गवाहों के बयान परिवर्तित हो जाते हैं। कोयलांचल में मिश्र लोक-संस्कृति देखने को मिलती है। छठ पूजा, बिरहा, दंगल, मेला में अपने गम को गलाता समाज दृष्टिगोचर है।

'सावधान! नीचे आग है' में इललिगल कोल माइनिंग सहित जिन समस्याओं को उठाया गया है, **'धार'** उपन्यास जनखदान के रूप में उसे समाधान की ओर ले जाती है। उपन्यास की नायिका मैना एक बहुत ही सशक्त चरित्र है। उसके शरीर को जितना भी नोचा-खसोटा गया, पर कोई उसे तोड़ नहीं पाया। अपने इलाके के तेजाब फैक्ट्री को बंद करवाने के जुर्म में जेल भी जाती है। अविनाश शर्मा के साथ मिलकर जनखदान खोलने का विचार प्रगतिशील है। उपन्यास में संथाल आदिवासियों का रहन-सहन, लॉबीर, भोज-भात, भूत-प्रेत, बलि प्रथा, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, ओझा, पर्व-त्योहार, लोकगीत, परंपरा आदि का सुंदर परिपाक हुआ है।

'पाँव तले की दूब' एक विचार प्रधान उपन्यासिका है जो स्वतंत्र राज्य के लिए झारखंड आंदोलन को आधार बनाकर लिखा गया है। पूरे उपन्यासिका में आदिवासियों की जीवन-शैली, जीवन-संघर्ष, उनके जीवन में व्याप्त शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, भ्रष्टाचार के अलावा, लोकसंस्कृति, लोकगीत, लोककथा, आदिवासी अस्मिता का सुंदर वर्णन है। लोकगीत और लोककथा इन भूखे, नंगे, कंगाल, अशिक्षित और उत्सव धर्मिता में डूबे संथाल आदिवासियों में साहस और सामर्थ्य जगाती है। इसमें पात्रों और घटनाओं की संख्या अधिक है, परंतु कथाकार स्वयं ही यह स्वीकार कर लेता है कि वह कोई भी चरित्र खड़ा करने में असफल रह गया है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में सामंतवादी व्यवस्था, आर्थिक विषमता, बेगारी, बेरोजगारी, दलित उत्पीड़न, प्राकृतिक मार, प्रशासनिक अकर्मण्यता, कुसंस्कार, अंधविश्वास, दरिद्रता, असमान भूमि वितरण, पॉलिटिकल सेल्टर, पहाड़, जंगल, गंडक नदी आदि ऐसे कारक हैं जो थारू आदिवासियों को डाकू बनने पर मजबूर कर देते हैं। एक प्रतिशत लोगों के हाथ में नब्बे प्रतिशत खेतिहर जमीन है। सभी पिछड़ों के हिस्से में मात्र पाँच प्रतिशत खेतिहर जमीन है। उपन्यास में देवता-पितर, भूत-भवानी, ओछा, बराह पूजा, सहोदरा माई का दरबार, मेला, लखराँव, झमटा सहित लोककथा, लोक-संस्कार एवं लोक समारोहों का वर्णन थरूहट की जीवटता का प्रतीक है। मास्टर मुरली पांड़े गांधीवादी विचारधारा के सत्यवादी, सत्यमार्गी सिपाही हैं जो मृत मलारी के अबोध-अनाथ शिशु को आश्रय देकर आशा की किरण को जीवित रखते हैं।

भोजपुरी के शेक्सपियर, नाट्य सम्राट, मलिक जी, रायबहादुर जैसी विभुतियों से सम्मानित भिखारी ठाकुर के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास **'सूत्रधार'** है। उपन्यास में जातीय संकीर्णता, शोषण, उपेक्षा, पूर्वजन्मों एवं पाप-पुण्यों का भ्रमजाल के प्रति जहाँ लोक कलाकार में काफी छटपटाहट है वहीं लोककला एवं लोक संस्कृति के प्रति अदम्य आस्था भी है। विदेसिया, बेटी-वियोग, गबरघिचोर, पिया निसइलन, नाई बहार आदि लोक नाटकों के मार्फत वे प्रवासी मजदूरों का दर्द, पीड़ा तथा समाज की समस्याओं की सही तस्वीर पेश करते हैं। बेटी बेचने जैसी कुरीतियों को उजागर करने के कारण कई बार वे उच्च जातियों

का कोपभाजन बनते-बनते बचें। इन्होंने अपने लवंडा नाच को भी अश्लीलता से दूर कर साहित्यिक-सांस्कृतिक ऊँचाई प्रदान की।

'रह गईं दिशाएँ इसी पार' एक वैज्ञानिक उपन्यास है, जिसमें जीवन-मृत्यु, शोध-अमरत्व, टेस्टट्यूब बेबी, ईश्वर, सेक्स इत्यादि को प्रयोगशाला में लाकर खड़ा कर दिया गया है। मनुष्य अजर और अमर होना चाहता है। परंतु दोनों एक्सपेरिमेंट फेल होते हैं। पूंजीपति विज्ञान और वैज्ञानिकों का दोहन अपने हितों में करते हैं। इसलिए जीन्स परिवर्तन का विद्रूप रूप हमें समाज में देखने को मिल रहा है। कैन्सर, गलत ईलाज, चूहों पर जीन्स का परीक्षण, क्रोमोजोम का अध्ययन, सेक्स चेंज, फूड हैबिट में परिवर्तन तथा सामाजिक रिश्तों का एक नये परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास है। हार्मोन ट्रिटमेंट के साइड इफेक्ट, आर्गन ट्रान्सप्लांट तथा क्लोनिंग पर भी विस्तार से चर्चा है।

'फाँस' उपन्यास में खेती की विभिन्न समस्याओं मसलन, बीजवपन, विनाई, गोड़ाई, कटाई के साथ-साथ किसानों का आंतरिक और बाह्य शोषण है जो उनके जी का जंजाल बन गया है। इससे मुक्ति की कामना ही लेखक का उद्देश्य है। अमेरिका के तर्ज पर यहाँ भी कापूस किसानों के लिए कर्ज के स्थान पर सब्सिडी की अपेक्षा है ताकि किसानों की आत्महत्या का सिलसिला रुके। किसानों के लिए पैकेज के स्थान पर ठोस पॉलिसी की आवश्यकता है। अंत में किसान फसल के न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारण में अपनी भागीदारी चाहता है।

अत: वे व्यवस्था में परिवर्तन के लिए बेचैन कथाकार हैं। उनके उपन्यास पाठकों को सोचने के लिए विवश करते हैं। वे अपने उपन्यास को एक प्रोजेक्ट की तरह देखते हैं। उनके उपन्यास किसी व्यक्ति विशेष की बात न करके पूरे अंचल की कथा कहते हैं। प्रेमचंद और रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए हासिये पर खड़े शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित और वंचित जनता के प्रति प्रतिबद्ध कथाकार हैं। वे क्षेत्र विशेष को प्रतीक रूप में प्रयोग कर उसका व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इनके उपन्यास अत्यंत उल्लेखनीय हैं।